तपोनिष्ठ ब्राह्मणों का इतिहास

लेखक-सम्पादक : डॉ. भूपेन्द्र मदीप्रसन्नजेत

तपोनिष्ठ ब्राह्मणों का इतिहास

तृतीय पुष्प

तपोनिष्ठ ब्राह्मणों का इतिहास

शोधकर्ता / संपादक / लेखक :
भारतभारती–रत्न व समाजरत्न
स्व. आचार्य पं. बदरीप्रसाद साकरिया

सहसंपादक / लेखक :
साहित्यमहोपाध्याय
डॉ. भूपतिराम साकरिया

प्रकाशक :
विनोदकुमार साकरिया BE, F.I.E
पं. मगनीराम साकरिया शोध प्रतिष्ठान
'सुविज्ञा' १३/१४ रघुवंश सोसायटी
वल्लभविद्यानगर (गुज.) ३८८ १२०

वितरक :
ज्ञानेशकुमार साकरिया
'सुविज्ञा', १३/१४ रघुवंश सोसायटी
वल्लभविद्यानगर (गुज.) ३८८१२०
❑

संस्करण : प्रथम
❑

प्रकाशन वर्ष : ३१-८-२००२ जन्माष्टमी
❑

मूल्य : ५०-००
❑

प्रकाशक :
विनोदकुमार साकरिया
पं. मगनीराम साकरिया शोध प्रतिष्ठान
'सुविज्ञा' १३/१४ रघुवंश सोसायटी
वल्लभविद्यानगर (गुज.)
३८८ १२०
❑

सर्वाधिकार संपादक को सुरक्षित
❑

मुद्रक :
धनलक्ष्मी ग्राफीक्स
C/o. जानकीदास चांदरतन
स्टार बिल्डींग, कालुपुर कोट की रांग,
रीलीफ रोड, अहमदाबाद-२ (गुज.)
फोन : (ओ) २१३३६५५

: समर्पण :

आचार्य पं. बदरीप्रसादजी साकरिया,
तपोनिष्ठ ब्राह्मणों के
ज्योतिर्धरों
तथा समाज
को
सादर समर्पित

...

अनुक्रमणिका

१. इतिहास की अंतर्कथा — डॉ. भूपतिराम बदरीप्रसादोत १

२. पुरोवाच — डॉ. भूपतिराम बदरीप्रसादोत ६

३. तपोनिष्ठ ब्राह्मण माहात्मय १५

४. तपोनिष्ट पुराण १६

अध्याय एक ... सृष्ठि उत्पत्ति १७

द्वितीय ... भारतभूमि तीर्थमहिमा १८

तृतीय ... मरुधन्व प्रदेश उत्पत्ति १९

चतुर्थ ... मरुधन्व का शस्य श्यामल व द्रुमकल्य होना २१

पंचम ... अर्बुदाचल स्थित तपोभूमि और उसके तीर्थों का वर्णन. २२

षष्टम ... पुष्करारण्य में ब्रह्माजी का अवतरण, तपोनिष्ठ ब्राह्मण उत्पत्ति, पुष्कर माहात्म्य २५

सप्तम ... तपोनिष्ठ ब्राह्मणों का देवाजिर में जाना, विष्णु सहित लक्ष्मीजी के दर्शन होना तथा देव धातु के उपयोग का अयाचित वरदान ।..... २७

परिशिष्ट

१. गोत्र व गोत्रकार ३०

२. समाज की दिवंगत विभूतियों के संक्षिप्त जीवन-वृत्त ३४

३. संदर्भ ग्रंथ ६१

४. वित्तीय सहायता : दातासूचि ७०

इतिहास की अंतर्कथा

आज से उनासीं वर्ष पूर्व दिनांक १५,१६,१७,१८ सितम्बर, १९२३ को महासभा के प्रथम सम्मेलन हाथरस, (उत्तर प्रदेश) में पहली बार जाति के इतिहास और मर्दुमशुमारी (जनगणना) से सम्बन्धित एक लेख पढ़ा गया था और यह कैसा सुखद संयोग है कि इस प्रस्तुत जातीय इतिहास के लेखक आचार्य पं. बदरीप्रसादजी साकरिया ही उस उपर्युक्त लेख के लेखक थे । निश्चय ही आचार्यजी का हृदय बड़ा प्रसन्न होगा कि अनेक व्यवधानों के बाद, यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य इनकी ही लेखनी से व इनकी ही अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । परन्तु जब वे अपनी आयु की शताब्दी की देहली को छूने ही वाले थे कि उनका स्वर्गवास हो गया और इस प्रकार वे उसका प्रकाशित रूप नहीं देख पाये ।

हाथरस के समाजोत्थान के प्रथम संगठित प्रयास के पन्द्रह वर्ष पूर्व (मई सन् १२०८) तत्कालीन मारवाड़ राज्य के प्रथम बैरिस्टर श्रीनारायणदासजी तथा अपने काल के माने हुए विधिवेता श्री प्रतापचन्दजी महेचा की अपील में समाज संगठन के बीज दिखाई पड़ते हैं । दोनों महाशयों ने एक संयुक्त अपील में समाज का इतिहास लिखने व विधवा विवाह प्रारम्भ करने के लिए निवेदन किया था । समाज सुधार के अन्तर्गत, उस समय विधवा–विवाह की बात करना एक बड़ा दुःसाहस था ।

वैसे भी इतिहास लेखन अपने आप में एक दुरूह कार्य है और उसमें भी यदि किसी भी प्रकार की सुविधाओं के अभाव में अकेले ही लिखना हो तो इस कार्य की कठिनता का अनुमान लगाया जा सकता है । यह कार्य लेखक के धैर्य व प्रशंसा की दाद मांग लेता है । हाथरस की महासभा के पश्चात् आचार्यजी इस कार्य में जी–जान से जुट गये । उन्होंने जाति के इतिहास की बिखरी कड़ियों को इधर उधर से एकत्रित कर उसको जब ब्यावर की द्वितीय महासभा में रखा तो कार्यकारिणी के सभी सदस्यों ने न केवल इस कार्य की एक स्वर से प्रशंसा की बल्कि इस क्षेत्र में की गई आचार्यजी की अमूल्य सेवाओं को लक्ष्य में रख, एक प्रस्ताव द्वारा उन्हे ''पण्डित'' की उपाधि से विभूषित किया गया । यह प्रथम अवसर था, जब किसी सदस्य की सेवाओं का इस प्रकार बहुमान किया गया हो ।

थोड़े समय पश्चात् आचार्यजी ने ''घोड़े का झगड़ा'' नामक पुस्तक की पाण्डुलिपि व इतिहास सम्बन्धित सारी संशोधित व परिवर्द्धित सामग्री तत्कालीन मन्त्री श्री मथुराप्रसादजी बाड़मेरा को मुद्रण हेतु सौंप दी । क्योंकि उस समय की इतिहास समिति ने उन्हें यह अधिकार दिया था कि वे इसे समिति की ओर से प्रकाशित करें । इसे हमारा दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि इसके बाद श्री बाड़मेरा का देहावसान हो गया और बहुत तलाश करने पर भी पांडुलिपि का पता नहीं लग सका ।

पुनः सामग्री एकत्रित की गई, पर उसकी भी यही दुर्दशा हुई । आज सत्तर वर्षों की सतत मेहनत के पश्चात् समाज को महिमामण्डित करने वाला उनका यह

अत्यन्त सराहनीय कार्य समाज को अर्पित हो रहा है ।

अनेक वर्षों के अंतराल के पश्चात् प्रो. रामस्वरूपजी (लाडण्) के एक पत्र (१०–१२–१९८४) में निहित सुझाव पर इतिहास लेखन की महत्ता को समझ, जोधपुर समाज की कार्यकारिणी ने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित कर, वहाँ के निष्ठावान अध्यक्ष श्री रामचन्द्रजी मंडोरा व मन्त्री श्री अमृतलालजी जसमतिया को अधिकार दिये कि वे इससे सम्बन्धित महानुभावों की बैठक बुला कर कार्य का श्रीगणेश करें । इन दोनों महाशयों के सद्प्रयत्नों से पं. बदरीप्रसादजी की अध्यक्षता में न्याति नोहरे में निम्न सदस्यों की एक त्रिदिवसीय बैठक बुलाई गई (१) आचार्य पं. बदरीप्रसादजी साकरिया (२) पं. ज्वालाप्रसादजी शास्त्री (३) डॉ. चन्द्रदेवजी शर्मा (४) प्रो. रामस्वरूपजी काला (५) डॉ. मोहनलालजी जिज्ञासु (६) पं. गोविन्द रामजी हेड़ाऊ (७) श्री मुरलीधरजी कट्टा (८) श्री देवकृष्णजी कश्यप (९) श्री मनोहरलालजी आर्य (१०) श्री रामचन्द्रजी मंडोरा (११) श्री अमृतलालजी जसमतिया (१२) श्री मानमलजी खटोर (१३) प्रो. भूपतिराम साकरिया । उपर्युक्त बैठक में सर्वश्री प्रो. रामस्वरूपजी, गोविन्दरामजी, पं. ज्वालाप्रसादजी, आचार्य पं. बदरीप्रसादजी, डॉ. चन्द्रदेवजी व देवकृष्णजी ने पत्रवाचन किये । अंत में तय हुआ कि हमारा समाज तपोनिष्ठ ब्राह्मण नाम से प्रसिद्ध है ।

इसी बैठक के सुझाव पर तीन मास पश्चात प्रतिनिधि सम्मेलन का एक आयोजन जोधपुर समाज के निमंत्रण पर सम्भव हो सका । इसमें देश के सभी भागों से प्रतिनिधिगण पधारे । अखिल भारतीय स्तर के चुनाव यहां सम्पन्न हुए तथा एक विस्तृत नई इतिहास समिति का गठन हुआ । दूर रहने के कारण प्रो. साकरियाजी[3] के मना करने पर, इस समिति के संयोजन का कार्य श्री देवकृष्ण कश्यप को सौंपा गया । पुरानी समिति के सारे सदस्यों के अतिरिक्त जिन सज्जनों को इसमें लिया गया, उनके नाम इस प्रकार हैं (१) श्री नाथूलालजी शर्मा (२) श्री केदारनाथजी शर्मा (३) श्री गोपाललालजी (४) श्री भंवरलालजी (५) श्री बंसीधरजी (६) श्री दाऊलालजी ऋषिपुत्र (७) श्री प्रहलादरायजी (८) श्री नगराजजी (९) श्री गोरधनलालजी ।

दिनांक २७–१२–१९८५ को संयोजक द्वारा व्यक्तिगत रूप से इतिहास विषयक एक प्रश्नावली इतिहास समिति के सारे सदस्यों व अन्य विद्वानों को भेजी गई । इससे अपेक्षित उत्तर प्राप्त न हो सके । इसके पश्चात् ६,७,८ जनवरी को महासभा की कार्यकारिणी की एक बैठक जयपुर में हुई । इसमें इतिहास के कार्य का जो विवरण दिया गया, उससे सदस्यों को संतोष न हो सका और कार्य को गति देने का निर्देश दिया गया ।

इसके नौ महीने पश्चात् दिनांक १३,१४,१५ सितम्बर को बीकानेर में अखिल भारतीय महासभा को कार्यकारिणी की बैठक हुई । इसमें ही १३–९–८६ को वयोवृद्ध समाजरत्न श्री हेमराजजी बाड़मेरा की अध्यक्षता में इतिहास समिति की एक बैठक हुई । इसमें जाति उत्पत्ति के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न विचार व्यक्त किये गये । बाद में कार्यकारिणी के समक्ष जब बैठक की कार्यवाही प्रस्तुत की गई तो कार्यकारिणी के सदस्य पुनः संतुष्ट न हो सके । यहां, कार्यकारिणी ने २७ मार्च, १९८७ तक कार्य पूर्ण करने का

अंतिमेथम इतिहास समिति को दे दिया ।

दिनांक २८,२९,३० मार्च को अहमदाबाद में अखिल भारतीय महासभा की कार्यकारिणी के साथ इतिहास समिति की बैठक रक्खी गई, जिसमें श्री देवकृष्ण कश्यप ने ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र से उत्पत्ति विषयक विचार व्यक्त किये तथा प्रो. श्रीकृष्णजी मंडोरा का इसी सूत्र पर आलेख पढ़ा गया जिस पर सदस्यों ने कहा कि इस विषय पर और शोध की जाय । दिनांक २९–३–१९८७ को पुनः इतिहास समिति की एक बैठक हुई, जिसमें श्री मुरलीरामजी कट्टा के प्रस्ताव पर पुरानी समिति को भंग कर एक नई छः सदस्यीय समिति का गठन आचार्य पं. बदरीप्रसाद जी साकरिया की अध्यक्षता में किया गया, जिसमें आचार्यजी के अतिरिक्त पण्डित ज्वालाप्रसादजी शास्त्री, प्रो. रामस्वरूपजी, पं. गोविन्दरामजी हेडाऊ, श्रीदेवकृष्ण जी कश्यप व प्रो. भूपतिराम साकरिया सदस्य थे । यह भी तय हुआ कि ये सब मिल बैठ कर सितम्बर १९८७ तक इतिहास को पूर्ण कर महासभा के अध्यक्ष को सौंप दें । यह बैठक समिति के अध्यक्ष के अनुकूल समय पर आबू पर्वत पर रखी जाय । अहमदाबाद की इस बैठक में इतिहास की इस नवनिर्मित समिति को एक अतिरिक्त कार्य भी सौंपा गया, जो समाज के झंडे के विषय में था । समिति ने आपस में सलाह कर उसका रंग रूप कैसा हो, महामन्त्री को लिख कर दे दिया ।

२० अप्रेल से आबू में श्रीमान् बाबूभाई कश्यप के निवास स्थान पर समिति की नियमित बैठकें प्रारम्भ हुईं । आबू के खुशनुमा वातावरण व श्री बाबूभाई के आदर सत्कार तथा प्रेम ने सबका मन मोह लिया । निर्व्याज भाव से समिति का आतिथ्य करने के लिए समाज सदैव इनका ऋणी रहेगा । इन बैठकों में समिति के दो महानुभाव उपस्थित न रह सके । प्रो. रामस्वरूपजी अपनी धर्मप.नी की रुग्णता के कारण उपस्थित नहीं रह सके, पर अपने एक पत्र में आचार्य साकरियाजी के नेतृत्व में विश्वास करते हुए ''तपोनिष्ठ'' को साग्रह स्वीकार करने के लिए लिखा था । श्री गोविन्दरामजी हेड़ाऊ, अपने बहनोई की मृत्यु के कारण उपस्थित न रह सके । उन्होने लिखा कि ''यह ईश्वररीय कार्य है, समय का कोई भरोसा नही, वह तो दौड़ा जाता है । इतिहास लेखन का कार्य हर हालत में पूरा होना ही चाहिये इसे आप सब विद्वद्वर लिखित रूप दें ।''

इस इतिहास में हमारे समाज की दिवंगत विभूतियों के जीवन चरित्र सम्बन्धी अध्याय को जोड़ कर संपादकोंने एक स्तुत्य कार्य किया है । बहुत ही कम लोगों को इन विभूतियों के महिमा–मंडित जीवन का पता होगा । देश के भिन्न भिन्न क्षेत्रों के इन अग्रणी महानुभावों के जीवन से प्रेरणा लेकर हम तथा हमारी आने वाली पीढ़ियाँ सदैव अग्रसर होती रहेंगी । संभव है कुछ लोग छूट गये हों अतएव नई जानकारी अपेक्षित है । मैं उन सज्जनों की आभारी हूँगा, यदि वे ऐसे ही दिवंगत महानुभावों के जीवन चरित्र भिजवायेंगे । इसी प्रकार एक अन्य महत्त्वपूर्ण अध्याय में गोत्र शब्द और उसका विश्लेषण तथा हमारे मूल गोत्रकारों का परिचय दिया गया है ।

आज जब ऐतिहासिक कार्य पूर्ण हुआ है तो मैं अति प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूं और इसमें जी जान से लगे सभी विद्वानों का हृदय से आभार मानता हूं ।

निन्याबे वर्ष की वृद्धावस्था में आचार्य साकरियाजी का जाति के प्रति जो अनुराग है, वह अकथ्य है, वे हर माने में हमारे समाजरत्न हैं । यह जो इतिहास आपके समक्ष है, उनके कठोर परिश्रम का ही परिपाक है । इन्हीं के सद्प्रयत्नों के फलस्वरूप ''तपोनिष्ठ पुराण'' की प्राप्ति हुई है । एतदर्थ समस्त समाज समष्टि रूप से आपका सदैव आभारी रहेगा । इस बीच अनेक महानुभाव जातीय इतिहास लिखने के लिए प्रेरणा देते रहे हैं । समाजरत्न स्व. श्रीमान हेमराजजी बाड़मेरा जाति की मुखपत्रिका के संस्थापक सम्पादक हैं । उन्होंने इतिहास सम्बन्धी एक पुस्तक तथा पुष्कर सम्बन्धी कुछ पृष्ठों की जीरोक्स प्रतियां आचार्यजी को भेज कर हमें आभारी किया है । उनमें भी जाति की अवदशा से उत्पन्न बड़ी पीड़ा थी ।

पं. ज्वालाप्रसादजी एम.ए. शास्त्री वैसे स्वयं इतिहास समिति के एक सदस्य हैं, पर अपने हर पत्र में वे आचार्यजी को लिखते रहते हैं कि यह श्रेष्ठ कार्य आपके सक्षम हाथों से सम्पन्न होना है । उनके अमूल्य सुझावों को सदैव अंगीकृत किया गया है । कलकत्ता के पं. मोतीलालजी शर्मा एक कर्मठ कार्यकर्ता हैं । इस अनुष्ठान के लिए वे अनेक बार वल्लभविद्यानगर आते रहे हैं और निरन्तर पृच्छा करते रहे हैं । वे पिछले कई दशकों से इतिहास के प्रश्न को लेकर सक्रिय रहे हैं । उनकी एक अनूठी योजना है । उन्होंने समाज के दिवंगत व वर्तमान विभूतियों के चित्र व कलैण्डर छपवाकर उन्हें प्रचारित करने की एक सुन्दर योजना बनाई है । कलकत्ता के कुछ अग्रणी समाजसेवियों के सहयोग से प्रथम चित्र भी छप भी चुका है । यह सर्वथा उचित ही था कि वर्तमान विभूतियों में प्रथम चित्र समाजरत्न पं. बदरीप्रसादजी का ही छपे ।

''तुलसी प्रज्ञा'' के सम्पादक व अवकाशप्राप्त उपाचार्य, प्रो. श्री रामस्वरूपजी इस कार्य से निरन्तर संयुक्त रहे हैं । उनके हृदय में जाति के इतिहास के अभाव की एक गहरी टीस थी, जिसको वे आचार्यजी से हर पत्र में निवेदित करते रहते थे । मैं उनका आभारी हूं । समाजसेवा की तमन्ना लिये पं. गोविन्दरामजी हेड़ाऊ आशुकवि हैं । वे इतिहास कार्य से बराबर संयुक्त रहे हैं । श्री अमृतलालजी जसमतिया की सेवाएं आदर्श हैं । उनकी अपरिहार्यता को हम सभी यत्र तत्र सर्वत्र देख चुके हैं । इनके साथ ही मौन साधक तथा जोधपुर समाज संगठन के अध्यक्ष श्री रामचन्द्रजी मंडोरा का जितना आभार माना जाय उतना ही कम है । श्री देवकृष्णजी कश्यप जोश के साथ इतिहास लेखन के कार्य से संयुक्त हैं । वे इतिहास समिति के एक समय के संयोजक भी रहे हैं । श्री मुरलीधरजी कट्टा का आबू में मिटिंग रखने में बड़ा हाथ था । वे सूझ बूझ के धनी हैं । श्री भवानीशंकरजी हमारे समाज के प्रमुख नेता रहे हैं । देश के कौने कौने में घूमकर इन्होंने विपरीत परिस्थितियों में समाज को संगठित करने का जो कार्य किया है, उसका कोई जोड़ नहीं है ।

प्रो. साकरिया ने न केवल सामग्री संकलन लेखन का कार्य किया है बल्कि वे तो उस बीहड़ उपत्यका ''देवाजिर'' में भी एक चर के साथ हो आये हैं, जो हमारे जाति का उत्पत्ति स्थल है । हरी हरी इस दुर्गम पर मनोरम घाटी में मीलों तक फैले

भग्नावशेषों के बीच आज केवल एक विष्णु मन्दिर अवस्थित है, जिसमें उत्कीर्ण एक शिलालेख के अनुसार इसका जीर्णोद्धार ४१९ वर्ष पूर्व किसी ने करवाया था ।

खेद की बात मात्र यही है कि हमारी अनिर्णायक अवस्था ने हमारी काफी हानि की है ।

इस ग्रंथ के मुद्रण हेतु जिन सन्नारियों और सज्जनोंने उदार हृदय से राशि अर्पित की, वे निश्चय ही पुण्यशाली हैं । ऐसे ही समाज-सेवी व्यक्तियों से धर्म-चक्र आगे बढ़ता है । इनकी नामावली तथा राशि का उल्लेख परिशिष्ठ में किया गया है ।

जब मैं पू. पिताजी के शताब्दी - समारोह को मनाने में व्यस्त था, अचानक मात्र तीन दिन की अस्वस्थता के पश्चात् उनका स्वर्गवास ३१-५-९५ को प्रातः हो गया । मेरी हार्दिक अभिलाषा थी कि वे अपने इस ग्रंथ का प्रागट्य देखते, परन्तु विधाता को यह स्वीकार्य नहीं था । मेरी मन की मन में रह गई । अंत में 'हरि करे सो होय' का आश्रय ही लेना पड़ता है । यह ग्रंथ उन्हीं दिव्यपुंज को सश्रद्धा समर्पित है । मुद्रण में जो अकल्पित देरी हो गई है, उसके लिये किसी को दोष देना अनुचित होगा ।

दिनांक : ३१-८-२००२ जन्माष्टमी
'सुविज्ञा'
१३/१४, रघुवंश सोसायटी
वल्लभविद्यानगर
(गुज.) ३८८१२०.

[डॉ. भूपतिराम बदरीप्रसादोत]

पुरोवाच

आज जबकि वैज्ञानिक आविष्कारों, यातायात की सुविधाओं, पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्कों तथा विश्वमानव की भावना को लेकर पुराने रूढ़िवादी विचार ढहते जा रहे हैं, तब किसी जाति विशेष की बात और वह भी उसके इतिहास लेखन की बात को लेकर प्रबुद्ध लोग हंसी उड़ा सकते हैं । यह सब कुछ सत्य होते हुये भी, यह बात भी उतनी ही सत्य है कि जिस जाति में हमारा जन्म हुआ है, जिसमें हमारा लालन–पालन हुआ है, जिसके रीति–रिवाजों में आबद्ध हम जीवन व्यतीत कर रहे हैं तथा जिसकी प्रताड़ित अवस्था को लेकर हम लोगों में अनावश्यक हीन ग्रंथियों का उद्‌भव संभव हुआ है, उसके उत्थान की चिन्ता करना हमारा परम लक्ष्य होना चाहिये । उस जाति की उत्थान की चिंता करने का अर्थ है, उसके मानव समुदाय के उत्थान की चिंता करना और मानवमात्र की उन्नति ही हमारी साधना का लक्ष्य होना चाहिए ।

यह कार्य जाति के गौरवमय इतिहास को उसके समक्ष रख कर बखूबी किया जा सकता है । हमारी जाति के इतिहास लेखन की सार्थकता भी इसी में है । एक बात और भी है । प्रत्येक मनुष्य में अपने पूर्वजों को जानने की एक तीव्र जिज्ञासा रहती है, जो अत्यन्त स्वाभाविक है । विपरीत इसके यदि ऐसा न हो तो समझ लीजिये कि वह जाति अधःपतन की सीमा उल्लंघन कर गई है । अंग्रेज इतिहासज्ञ मेकाले ने ठीक ही लिखा है कि – 'A people, who takes no pride in the noble achievements of remote ancestors will never achieve anything worthy to be remembered with pride by remote discendents' जो जाति अपने पूर्वजों के उदात्त पुरुषार्थों के लिये गौरव नहीं लेती, वह आनेवाली पीढ़ियों द्वारा कभी सम्मानपूर्वक स्मरित नहीं की जायेगी । सद्‌भाग्य से हमारा पतन अभी इस सीमा तक नहीं पहुंचा है । अतएव उसके पुनरुत्थान की भावना से प्रेरित होकर जो एक निष्ठावान प्रयत्न किया गया है तथा उसके फलस्वरूप जो रत्न–राशि प्राप्त हुई है, वह यहां जाति हित प्रस्तुत की जा रही है । इस सामग्री के पठन से मालूम होगा कि हम कितना भटक गये हैं ।

इतिहास लेखन अपने आप में एक दुरूह कार्य है । विगत घटनाओं का तथ्ययुक्त ब्यौरेवार वर्णन प्रस्तुत करने में अनेक अवरोधों का सामाना करना पड़ता है । लेखक की रुचि–अरुचि, घटना के प्रति उसका दृष्टिकोण, उसकी राष्ट्रीयता, उसकी जाति, प्रमाणों की उपलब्धि – अनुपलब्धि आदि अनेक ऐसे कारण हैं, जो लेखन की निष्पक्षता को प्रभावित करते हैं । इन परिस्थितियों में किसी जाति विशेष के इतिहास को कालक्रमानुसार लिपिबद्ध करना दुष्कर बन जाता है । यह कार्य और भी दुसाध्य बन जाता है, जब हिन्दू समाज के जाति रूपी उदधि में से अपेक्षाकृत संख्या में अधिक अल्प तथा व्यवसाय की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण धंधे से संबंधित जाति का इतिहास लिखना हो ।

फिर भी चूंकि इतिहास के अवलोकन, अध्ययन से हम जाति, समाज व राष्ट्र के उत्थान व पतन के कारणों को जान सकते हैं और इतिहास भविष्य के लिये उचित पथ – प्रदर्शन भी करता है, अतएव हमारे समाज का गौरव व महत्व तभी ठीक से प्रकाश में आ सकेगा, जब हम उसके इतिहास को प्रस्तुत करें ।

इस भूमण्डल के किस काल तथा खण्ड में प्रथम मनुष्य का अवतरण हुआ, अद्यावधि एक विवादास्पद व अनिर्णीत विषय ही बना हुआ है । वैज्ञानिकों व इतिहासकारों के अथक प्रयत्नों के पश्चात् भी मानवों के अनेक वंशों की सृष्टि कब हुई, पता नहीं लगाया जा सका है । हाँ, यह अवश्य सर्वस्वीकृत है कि भारतवर्ष की समस्त जातियों का उद्‌गम हिन्दुओं के चार वर्णो में स्थित है । प्राग्वैदिक काल में वर्णों के अस्तित्व का पता नहीं चलता, लेकिन वैदिक काल में इनके यदाकदा दर्शन होते हैं, पर उस कठोरता का सर्वथा अभाव था, जिनकी कठोर सीमाओं में आज का हिन्दू समाज आबद्ध है । ऋग्वेद पर 'घाटे अभिभाषण' पृ. १६९ डॉ. वी. एस सुकथकर ने कहा है कि : It must be first stated that nothing like the present divisions and sub-divisions, which have made caste system a caste-chaos, has place anywhere in sanskrit literature. In the hynms of Rigveda, there is only one passage referring to this fourfold division and that is x.90.12. The hymns known as पुरुष सूक्त is however regarded by many scholars as being very late production... it is more allegorical representation than a literal statement of facts. [भावार्थ : प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में जातिभेद का कहीं उल्लेख हमें दिखाई नहीं देता. हाँ, ऋग्वेद के दसवें मण्डल में (जो विद्वानों की सम्मति में ऋग्वेद का बहुत बाद में जोड़ा गया भाग है) चार वर्णों का जिक्र है । चार वर्णों का यह विचार भी ऋग्वेद में अलंकारिक है और साहित्यिक वर्णन के अतिरिक्त वह कोई विशेष महत्व नहीं रखता.] 'एक वर्णमिदं पूर्ण विश्वमासीद युधिष्ठर कर्म क्रिया विशेषण चातुर्वण्यं प्रतिष्ठितम्' से पता चलता है कि आरम्भ में कोई जाति नहीं थी[1] सभी ब्राह्मण थे[2] पर जब से इन ब्राह्मणों ने भिन्न–भिन्न कर्म स्वीकार किये, तभी से वर्ण विभागों की स्थापना हुई[3] । वास्तव में तत्कालीन समाज में व्यवसाय, परस्पर विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध, ऊंच–नीच का भेदभाव आदि के न होने के कारण, वह पश्चात्कालीन समाज व्यवस्था से अधिक लचीली थी ।

वर्ण व्यवस्था का सीधा सम्बन्ध अनेक विद्वान ''पुरुष सूक्त'' (जिसका उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं तथा जो अनेकों द्वारा प्रक्षिप्त अंश माना जाता है) के एक मंत्र से स्थापित करते हैं, जो सर्वधा अवैज्ञानिक है :–

ब्राह्मणो स्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृत ।
उरु तदस्य यद्वैश्यः पदाम्यां शुद्रो अजायत ।।

---

१. महाभारत; शांति पर्व. अध्याय १८८.
२. महाभारत, शांति पर्व. अध्याय १८८-८९
३. महाभारत, शांति पर्व. अध्याय १८८-८९

(ब्राह्मण मुख से, क्षत्रिय बाहुओं से, वैश्य जंघाओं से तथा शूद्र पुरूष (ईश्वर) के पैरों से उत्पन्न है । पुनः ऋग्वेद में इस पुरुष को सहस्त्र सिर, सहस्त्र नेत्र, सहस्त्र पैरों वाले विराट पुरुष के रूप में कल्पित किया गया है :–

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपाद ।
पुरुष एवेदं सर्व यदभूतं यच्च भव्यम् । १०–९०–१–२–१२.

वास्तव में यह पुरुष कोई व्यक्ति या भगवान न होकर समाज रूपी चैतन्य पुरुष है । जिस प्रकार शरीर के भिन्न–भिन्न अंग भिन्न भिन्न कार्य करते हुए भी शरीर के अभिन्न अपरिहार्य अंग हैं तथा एक–दूसरे के सुख–दुःख के साथी हैं, ठीक उसी प्रकार ये वर्ण एक–दूसरे के पूरक हैं – कोई किसी से हीन नहीं हैं । आज जब आधुनिक समाजशास्त्री भी समाज को एक जीवित पुरुष मानने लगे हैं तो उक्त पुरुष सूक्त की बात को (दैविक उत्पत्तिवाद के आधार पर नहीं) और अधिक अच्छी प्रकार से समझा जा सकता है । ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में इस मंत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है कि "यहां पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृति है । जब वह निराकार है तो उसके मुखादि अंग नहीं हो सकते हैं और यदि वह अंगवाला है तो व्यापक नहीं हो सकता तथा नहीं ही वह सर्वशक्तिमान जगत का सृष्टा, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषणों वाला हो सकता है ।" ऋषि दयानन्द ने इस प्रकार दैविक उत्पत्ति वाद के मूल में ही कुठाराघात करके जाति वाद के विषचक्र को तोड़ने का प्रयत्न किया है ।

इधर गीता में श्रीकृष्ण ने जाति विषयक अपने विचारों को प्रस्तुत कर, पूर्ववर्ती विचारों को सर्वथा निरर्थक व निरुपयोगी प्रमाणित कर दिया है :–

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः ।
तस्य कर्तारमपि मां विद्धय कर्तारम् व्ययम् ॥

महाभारत के शांति पर्व में लिखा है :

न विशेषो, स्ति वर्णानां सर्व ब्राह्ममिद जगत ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥ १८८/७४.

(अर्थात् वर्णों का आपस में कोई भेद नहीं है । सारा संसार परमात्मा की सृष्टि है, भिन्न–भिन्न कर्मों के कारण भिन्न–भिन्न वर्ण बने ।)

सच तो यह है कि वर्ण व्यवस्था तो समाज के श्रम विभाजन की एक प्रणाली मात्र थी । यदि ऐसा न होता तो गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार उसमें जो परिवर्तन होते थे, वे न होते । इसी को लक्ष कर मनु ने मनुसंहिता में लिखा कि ब्राह्मण शुद्र वर्ण में जा सकता था और शुद्र ब्राह्मण वर्ण में :–

शुद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शुद्रताम ।
क्षत्रियाज्जातमेवस्तु विद्याद्वैश्या तथैव च ॥ १०/६५

आपस्तम्ब धर्मसूत्र १/५/१०–११ में भी इस मान्यता को स्पष्ट करता एक श्लोक है :–

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्व पूर्व वर्णमापद्यते जाति परिवृतौ ।
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्य जघन्य वर्णमापद्यते जाति परिवृतौ ।।

(अर्थात् – धर्माचरण से निकृष्ठ वर्ण अपने से उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिसके वह योग्य हो । वैसे ही अधमाचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अधमाचरण के बाद अपने से नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे)

ऐसा नहीं है कि मनुस्मृति के इस श्लोक को व्यावहारिक रूप न मिला हो । हां, इसके रूप भिन्न–भिन्न थे । ऐतरेय ब्राह्मण २/१९ में कवष–ऐलुब जन्मना निम्न जाति का व्यक्ति, ऋषित्व के कारण ऋषिओं में परिगणित होकर उच्च वर्णस्थ कहलाया । अनेक राजाओं ने अपने शक्ति बल से अपने लाभार्थ कितनी ही जातियों की मर्यादा स्थापित कर दी । प्रतापगढ़ (उत्तर प्रदेश) के अहीर और कुर्मी, राजा माणकचन्द शासक होने के कारण ब्राह्मण बन गये[१] । उन्नाव के राजा तिलकचंद ने प्यास की मार से हैरान होकर एक लोध के हाथ का पानी पी लिया था और बाद में उसे ब्राह्मण बना लिया था[२] । इतिहास में इस बात के भी अनेक सबूत हैं कि आर्थिक स्थिति अच्छी होते ही कई जातियों ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बन गई हैं । ऐसा भी हुआ है कि एक ही जाति का एक वर्ग आर्थिक दृष्टि से अधिक सम्पन्न होने के कारण उच्च जाति का हो गया तथा दूसरे वर्ग को आर्थिक विपन्नता के कारण निचली जाति में मान लिया गया ।[३] थोड़ा और इतिहास की गहराइयों में उतरें तथा प्राचीन व्यवस्था (संस्कृति)की ओर दृष्टिपात करें तो सैंकड़ों नहीं, सहस्त्रों की संख्या में ऐसे उद्धरण उपलब्ध हैं, जहां एक वर्ण से दूसरे वर्ण में व्यक्तियों का रूपान्तर हुआ है । इनमें से कुछ दृष्टव्य हैं :– (१) अंबरीष राजा (क्षत्रिय) का पुत्र यौवनाश्व और यौवनाश्व का पुत्र हारीत राजा अंगिरस का शिष्य बन कर आंगरस गौत्री हारीत ब्राह्मण बना[४] । राजा दुष्यंत के तीनों पौत्र ब्राह्मण बने[५] । वीतहव्य राजा क्षत्रिय होकर भार्गव ब्राह्मण बना[६] और तो और वेदकर्ता ऋषियों में दो क्षत्रिय और तीन वैश्य कुलोत्पन्न थे ।

जातियों और उपजातियों में बंटा हमारा हिन्दू समाज सचमुच विचित्र है, जो धर्म की गतिशीलता को छोड़ कर स्थिरता में विश्वास करने लग चुका है । वह अब जड़ीभूत बन गया है और यही आगे चल कर हमें संगठित न बनने देकर हमारे पतन का मूल कारण बना हुआ है ।

कुछ जातियों का उद्‌गम संप्रदाय विशेष के महान् आचार्यों व संतों के नाम

---

१. अशोक के पूल – डो. हजारीप्रसाद द्विवेदी
२. अशोक के पूल – डो. हजारीप्रसाद द्विवेदी
३. अशोक के पूल – डो. हजारीप्रसाद द्विवेदी
४. अशोक के पूल – डो. हजारीप्रसाद द्विवेदी
५. अशोक के पूल – डो. हजारीप्रसाद द्विवेदी
६. अशोक के पूल – डो. हजारीप्रसाद द्विवेदी
७. मत्स्य पुराण ५४१६ गीता प्रेस गोरखपुर

पर से हो गया । चैतन्य महाप्रभु ने धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मण - चांडाल का कोई भेद नहीं रखा और उनका विशाल शिष्य समुदाय कालान्तर में विवाह करके वंश चलाने लगा। इसी प्रकार गोरखनाथ के संप्रदाय से नाथ जाति अस्तित्व में आई तो आदि शंकराचार्य के कारण दसनामी स्वामियों की जाति का आविर्भाव हुआ । इतना होते हुये भी खेद है कि जाति-भेद धर्माचायों के आश्रय में बढ़ा है और उन्होंने स्वयं ही जाति प्रथा को धर्म की प्रगति के मार्ग में रोड़े के रूप में खड़ा कर दिया है । ओसवालों (जैन) इतिहास से पता चलता है किं ओसियां नगर की सभी जातियों के लोगों ने सामूहिक रूप से जैनधर्म स्वीकार कर लिया ।

हमारे देश में जातिभेद व छूआछूत की विचित्र प्रथाएं हैं । इस प्रकार की व्यवस्था संसार के अन्य राष्ट्रों व समाजों में नहीं है । इससे हमारे मन में कहीं यह भावना पैदा न हो जाय कि हमारी यह व्यवस्था श्रेष्ठ थी व है । विपरीत इसके इससे हिन्दू समाज में उच्चता व हीनता की ग्रंथियां दृढ़ हो गई हैं और अनेक जटिलताएं उत्पन्न हो गई हैं । यही नहीं, हमारी सैकड़ों वर्षों की दासता का भी मूल इसमें निहित है । अंग्रेज लेखक ब्लूमफील्ड ने ठीक ही लिखा है कि :- The corrosive properties of the single institution, more than anything else whatsoever have checked the development of India into a nation. They have made possible governed by the skill of 60,000 military personnel and 60,000 civilians foreigners.

इस जातीय बन्धन की कृपा से भारत में भारतीयता का ह्रास हुआ है जिसका परिणाम आज हम अपनी आंखों से देख रहे हैं कि तीस करोड़ की जनसंख्या पर केवल सवालाख विदेशी शासन करते हैं । मुसलमानों के आरम्भिक काल में यह संख्या और भी कम थी ।

अतएव अब समय रहते हमारे समाज सुधारकों को इसका उपाय ढूंढ़ लेना चाहिये । यदि किसी कारण ऐसा न हुआ तो जिसे हम भारतीय संस्कृति व हिन्दू धर्म कहते हैं, उसमें ऐसा विस्फोट होगा कि जिसकी किसी ने कल्पना भी न की होगी । लगता है कि विस्फोट की वह प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी है । अतएव हमें त्वरा से उसमें आवश्यकतानुसार समाज को नई दिशा देनी चाहिये ।

हमारे यहां अनेक ऐसी जातियाँ हैं, जिनका निर्माण एक पेशे विशेष से संबंधित है । चाम का काम करने वाला चमार बन गया तथा लोहे का काम करने वाला लुहार । पेशे के कारण किसी जाति की उत्पत्ति होना एक अद्‌भुत बात है, फिर भी विडम्बना यह है कि इस महादेश की असंख्य जातियां पेशे से ही जानी जाती हैं । स्वर्णकारों को ही लीजिए । स्वर्णकारी एक पेशा है, एक कला है, उसे कोई भी सीख सकता है और आजीविका के लिये अपना सकता है । अनेक जातियों के अनेक लोगों ने इसे सुविधानुसार अपनाया । यही कारण है कि आज इस देश में सैंकड़ों प्रकार के स्वर्णकार हैं, जिनके रीति-रिवाज अलग हैं तथा जिनमें परस्पर रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं है । कैसी विचित्रता है कि कार्य सभी एकसा करते हैं, फिर भी कोई ब्राह्मण स्वर्णकार है, कोई मेढ़ क्षत्रिय सुनार है, कोई श्रीमाली वैश्य सोनी है, कोई परज्या

(क्षत्रिय) सोनी है तो कोई त्रागड़ सोनी । इनके अतिरिक्त बनिये, पटेल, सुथार, जाट, कुम्हार, सिक्ख, मुसलमान सभी इस धंधे को करते हैं । सच तो यह है कि हमारे देश के हर प्रांत में अनेक जातियों के लोग इस धंधे को करते हैं और सबकी पहचान अलग है । यही बात अन्य पेशों के संबंध में भी सत्य है । प्राचीन काल में महाभारत के शांति पर्व का उदाहरण लें तो मरुत राजा के वंशधर, जो बल में इन्द्र के समान थे, स्वर्णकारी का धंधा करते थे[1] ।

वैदिक युग और महाभारतयुगीन स्वर्णकारों की निजी पहिचान उपलब्ध नहीं है, पर बाद के युगों में इस धंधे को करने वाले स्वतंत्र पहिचान के रूप में ऊभर कर आने लगे । यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि स्वर्णकारी पेशे के सभी लोगों ने अपनी मूल जाति से संबंध बराबर बनाये रखा है । ब्राह्मण स्वर्णकार मूल रूप से इसके ब्राह्मणत्व का परिचायक है । लगातार अनेक शताब्दियों से वंश परम्परागत एक ही पेशे को अपनाने के कारण, अनजाने ही अपने मूल से थोड़ा कट सा गया । षोडष संस्कारों को अपनाते हुए भी कुछ ने अपने पेशे की व्यस्तता के कारण उन्हें त्याग कर, वह निश्चिंत हो गया । कुछ मानों में उसकी अन्यमनस्कता ही उसके ह्रास का कारण बनी ।

कार्यगत दक्षता ही कला है । ब्राह्मण स्वर्णकार ने स्वर्ण व रजत पर अपने आपको न्योछावर कर दिया । उसने अपनी इच्छानुसार स्वर्णादि धातुओं को मोड़ा, ढ़ाला, ठोका, पीटा और इस प्रकार अपनी विलक्षण प्रतिभा के बल पर कला जगत को बेनमून सहस्त्रों आभूषण व मूर्तियां दीं, जो जन जन के गले का हार बने और उससे उसे प्रतिष्ठा मिली । उसने राजा-रंक सबको आभूषित किया, पर स्वयं अभूषित रह गया । आखिर वह कौनसी लाचारी थी, जिसके वशीभूत हो उसे ब्रह्मविद्या की अपनी पुश्तैनी परम्परा को त्याग कर, अपेक्षाकृत सर्वथा नवीन पेशे को अपनाना पड़ा ।

वास्तव में बात यह हुई कि जैसे जैसे समाज में धन की प्रतिष्ठा बढ़ती गई तथा समाज में राजा और धनवान प्रमुख होते गये, वैसे वैसे अन्य लोगों में द्रव्योपार्जन की आवश्यकता और प्रवृत्ति बढ़ती गई । दूसरी और ब्राह्मण को अपने ऊंचे से ऊंचे ज्ञान व चरित्र बल का भरोसा था । उसके लिए अध्यापन और याजन जीविकोपार्जन के साधन थे । पर जब उसे यह लगा कि ये दोनों अब जीविका के सक्षम आधार नही रहे हैं तो उसने परिग्रह को अपना लिया । वैसे दान लेने में कोई झिझक नहीं थी । पर उनमें से अनेकों को यह अपमानजनक लगा । हाथ पसारने में व्यक्तिगत व सामजिक अपमान तो है ही, अतएव परिवर्तित परिस्थितियों में उन्हें अपनी भौतिक परिस्थितियों का ध्यान आया और वे विभिन्न अर्थकर कार्यों में लग गये । आज भी इस परिवर्तन की प्रक्रिया क्षिप्र गति से जारी है । दिन प्रतिदिन अधिकाधिक विप्रगण सरकारी सेवाओं के अतिरिक्त जवाहरात की दुकानें, किराने की दुकानें, कपड़े की दुकानें आदि लगाने तथा अनेक उद्योग धंधों में उनका प्रवेश अधिक धनोपार्जन की दिशा

---

१. महाभारत, शांति पर्व

में उनके बढ़ते कदम हैं । इस क्रम में उनका एक चरण था संसार की श्रेष्ठतम धातु पर अपनी दक्षता की अमिट छाप छोड़ना । श्रेष्ठ कलात्मक कार्य उस समय भी प्रशंसनीय अवश्य रहे थे, पर उनके माध्यम से आजीविका चलाना, ऊंची मर्यादा से चलित माना जाता था । इसका एक सुन्दर उदाहरण शूद्रक के "मृच्छकटिकम" में दृष्टिगोचर होता है, जब वसंतसेना नामक एक गणिका ने एक संवाहक (मर्दक – मालिश करने वाला) के सुन्दर मर्दन की प्रशंसा की तो संवाहक ने दीनता भरे शब्दों में उत्तर दिया कि "क्या बताऊं आर्ये ! इसे सीखा तो कला जान कर ही था पर अब यह जीविका का माध्यम बनी है ।" वस्तुतः जब जब कला जीविका का माध्यम बनी है, वह हीन ग्रंथियों से युक्त हो जाया करती है ।

अठारह मुख्य पुराणों (ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्मांण्ड) के अतिरिक्त "देवी भागवत" उन्नीसवां पुराण माना जाता है । अठारह उपपुराण (सनत्कुमार, नृसिंह, नंद, शिवधर्म, दुर्वासा, नारदीय, कपिल, उशनस, मानव, वरुण, काली, महेश्वर, सांब, सौर, पाराशर, मारीच और भार्गव) हैं । विष्णुधर्मोत्तर और बृहद्धर्म भी दो उपपुराण माने जाते हैं । कालान्तर में अनेक और पुराण संज्ञक ग्रंथ निर्मित होते गये । आज इनकी संख्या सौ से ऊपर है । वशिष्ठ पुराण, कलियुग पुराण, नीलमत (काश्मीर) पुराण, अर्बुद पुराण, पुष्कर पुराण और श्रीमाल पुराण आदि अनेक ऐसे पुराण हैं, जो किसी जाति, व्यक्ति, प्रदेश और युग के वाचक हैं । लगता है कि इन सारे पुराणों से भी प्राचीन "तपोनिष्ठ पुराण" है, जिसे व्यासजी ने अर्बुदाचल पर तपोनिष्ठ ब्राह्मणों की अनुपम तप साधना को देख सुन तथा उनकी साधना से प्रभावित होकर उनकी प्रशंसा में सर्जित किया था । यह अर्बुदाचल के रम्य व्यास आश्रम की भव्य प्रसादी है । एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि अठारह पुराणों तथा अन्य पुराणों की प्रामाणिकता पर सदैव एक प्रश्न चिन्ह बना रहा है । बौद्धों, जैनों, आर्य–समाजियों और यहां तक कि प्रबुद्ध सनातनी भी आज इनके काल और इनकी कथाओं की अव्यावहारिकता का जोरदार खण्डन करते हैं । इन पुराणों में अनेक ऐसी बातें हैं जो इतिहास से मेल नहीं खातीं । फिर इन पुराणों में कई जातियों की उत्पत्ति का वर्णन है, जिनका पुराणों की रचना काल में कोई आस्तित्व ही नहीं था । पुराण सृष्टि का वर्णन भी भिन्न भिन्न ढंग से करते हैं – आधुनिक ब्राह्मणों की शताधिक जातियों के नामों का उल्लेख तक पुराणों में नहीं है यथा–दाहिमा, पारीक, कन्नोजिया, श्रीमाली, खेड़ावाल, मेवाड़ा, सांचोरा पुष्करणा गुजरगौड़ आदि । पर चूंकि तपोनिष्ठ पुराण धर्मनिष्ठा से ओतप्रोत है तथा इतिहास–साक्ष्य है, अतएव उसमें उपर्युक्त अव्यावहारिकताओं का समावेश नहीं है ।

दो सौ–ढाई सौ वर्ष पूर्व काशी के इतिहास, समाजशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा व्याकरणादि के प्रकाण्ड पंडित भवनिधि शर्मा ने तपोनिष्ठ पुराण का संस्कृत संक्षिप्तीकरण किया था । इसी का हिन्दी अनुवाद बालोतरा के प्रसिद्ध विद्वान पं. विश्वनाथ शर्मा के बड़े भाई

पं. लक्ष्मीनारायण दवे ने अपनी शैली में किया था । पं. लक्ष्मी नारायणजी काशी में वानप्रस्थी के रूप में निवास करते थे । वानप्रस्थी बनने के पूर्व व उसके बाद भी पं. लक्ष्मीनारायण जी काशी के ही एक पुस्तकालय में हस्तालिखित ग्रंथों का संपादन कार्य कर, अति सादगी से अपना जीवन निर्वाह करते थे तथा काशी में ही भगवानानंद में मस्त रहते थे । पं. लक्ष्मीनाराण जी, आचार्य पं. बदरीप्रसाद साकरिया के गहरे मित्रों में से थे । उन्होंने यह अनुवाद आचार्य जी के लिये किया था । पर विधि की विचित्रता देखिये कि यह अनुवाद विक्रेताओं के हाथों चढ़ गया, जो अन्त में जसौल गांव के श्री हस्तीमलजी जैन को मिला । श्री जैन ने बालोतरा के एडवोकेट श्री रामकर्ण गुप्त को बेच दिया । श्री रामकर्ण आचार्य जी को अपना बड़ा भाई समझते थे और जैसे ही उन्होंने यह प्रति पढ़ी, उन्होंने आचार्यजी को सूचित किया । आचार्यजी ने उसकी प्रतिलिपि की, जो यहाँ प्रस्तुत है । यह सर्व दृष्टि से प्रामाणिक है ।

इसे हमारा सौभाग्य ही समझना चाहिये कि बाह्य आक्रमणकारियों और कुछ द्वेषी संप्रदायों द्वारा हमारे संस्कृति के प्रतीक मंदिरों और पुस्तकालयों को बड़ी मात्रा में जलाने के पश्चात् भी तपोनिष्ठ पुराण का यह वर्तमानस्वरूप किसी प्रकार बचा रहा, जो हमारी जाति का संबल बना । परमात्मा का इसके लिये कोटिशः उपकार ।

उपलब्ध तपोनिष्ठ पुराण सात अध्यायों में विभाजित है । प्रथम अध्याय में सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन है । द्वितीय में पुष्करारण्य और अर्बुदाचल क्षेत्र की महिमा है । तृतीय में मरुधन्व प्रदेश की उत्पत्ति का वर्णन है । चतुर्थ में मरुधन्व को शस्यश्यामल और द्रुमकल्य बनाने का विवरण है । पंचम में अर्बुदाचल और आदिवलय (आडवला) पर स्थित विभिन्न तीर्थों का वर्णन है । षष्टम अध्याय में पुष्करारण्य क्षेत्र तथा पुष्कर का महात्म्य व तपोनिष्ठ ब्राह्मणों की आबू में उत्पत्ति और सप्तम अध्याय में तपोनिष्ठ ब्राह्मणों को भगवान् विष्णु व भगवती लक्ष्मीजी के दर्शन तथा स्वर्णाभूषणों के निर्माण का उनके अहैतुक व अनमांगे विचित्र वरदान का वर्णन है । अन्त में तीन परिशिष्ठ दिए गए हैं ।

अर्बुदाचल स्थित ''देवाजिर'' का वर्णन करना यहां संगत ही होगा, क्योंकि वही हमारा उत्पत्ति–स्थान है । आबू पर्वत पर जब इतिहास समिति की बैठकें हो रही थीं, तो एक दिन प्रो. साकरिया, श्री बाबूभाई कश्यप की सहायता से स्थानीय पर्वतारोहण संस्था के एक कर्मचारी को साथ लेकर उस पुण्यभूमि के दर्शन कर आये । रमणीय पर दुर्गम घाटी में स्थित देवाजिर सनसेट पांईट से दो मील नीचे उत्तर में है । वहां के विस्तृत क्षेत्र में फैले मंदिरों और आश्रमों के भग्नावशेष इस बात के साक्षी हैं कि अपने काल में इस तपोभूमि का देश में बड़ा महत्व रहा होगा । उन खण्डहरों में प्राप्त भगवान शिव की विशाल त्रिमूर्ति आज अनादरा गांव की शोभा बढ़ा रही है । आज देवाजिर में जीर्णशीर्ण अवस्था में एक चतुर्भुज विष्णु का मंदिर अवस्थित है । काले पत्थर से निर्मित यह मूर्ति थोड़ी खण्डित, पर भव्य है, सं. १६८४ में इस मन्दिर के पुनरूद्धार का वहां एक शिलालेख है, जो मन्दिर के द्वार पर दीवार में जड़ित है ।

समाज को चाहिये कि शीघ्रताशीघ्र इस मन्दिर की मरम्मत आदि करवा तथा पूजादि की व्यवस्था कर, इस गौरवमय जाति स्थल पर प्रति अक्षय तृतीया के शुभ दिन तीर्थ यात्रा की जाय । यहीं से एक मील दूर भगवान सूर्यनारायण (दो मंदिरों में से अब एक ही शेष है) का मन्दिर है । सप्त अश्वों द्वारा चालित रथारूढ़ भगवान सूर्य की प्रतिमा सुन्दर है । यहां से उत्तर की ओर वासस्थानजी नामक एक स्थान है, जहां एक बड़ी गुफा में भगवान विष्णु की १८ फीट लम्बी, १२ फीट चौड़ी ६ फीट ऊंची भव्य मूर्ति है ।

यद्यपि सात अध्यायों में तनोनिष्ठ पुराण पूर्ण नहीं होता है, पर एक स्थान पर टिप्पणी में अनुवादकर्ता ने इसके दस अध्याय बतलाये हैं । इन अगले तीन अध्यायों में तनोनिष्ठ ब्राह्मणों के संतान होने और उनके नामादि पर गोत्रों की स्थापना व निगमादि ग्रंथों का वर्णन है, जिन्हें अनुवादकर्ता अपनी बीमारी के कारण लिपिबद्ध न कर सका ।

–डॉ. भूपतिराम साकरिया

तपोनिष्ठ ब्राह्मण लक्षणम्

(सप्तश्लोकी)

शान्तः दान्तः सुशीलश्च सर्वभूतहिते रतः ।
क्रोधं कर्तुं न जानाति सः तपोनिष्ठ–सुकृती ।।१।।

सन्ध्योपासनशीलश्च सौम्यचित्तो दृढव्रतः ।
समः परेषु च स्वेषु तत्तपोनिष्ठ – लक्षणम् ।।२।।

एकाहारश्च सन्तुष्टः स्वल्पाशी स्वल्पमैथुनः ।
ऋतुकालाभिगामी च तत्तपोनिष्ठ–लक्षणम् ।।३।।

परान्नं परवित्तं च पथि वा यदि वा गृहे ।
अदत्तं नैव गृह्णाति तपोनिष्ठः स उच्यते ।।४।।

सत्यं ब्रह्म तपो ब्रह्म ब्रह्म चेन्द्रिय–निग्रहः ।
सर्वभूतदया ब्रह्म तत्तपोनिष्ठ–लक्षणम् ।।५।।

योगस्तपो दमो दानं सत्यं शौचं दया श्रुतम् ।
विद्या–विज्ञानमास्तिक्य तपोनिष्ठस्वभावजम् ।।६।।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवाः मृत्युमजीजिनत् ।
तपसि निष्ठस्तु सुदृढा तपोनिष्ठः सः पूज्यते ।।७।।

तपोनिष्ठ पुराण

अथ श्री तपोनिष्ठ पुराण

श्री गणेशाय नमः । श्री शारदायै नमः । श्री विश्वनाथाय नमः ।

॥ अथ मंगलम् ॥

विनायकः शूलप्राणिर्मुकुन्दः सूयश्च व्यासः रघुवंशनाथः ।
तेभ्यो नमः सद्विद्याभृतेभ्यः प्रदातृभ्यः स्वाश्रितवत्सलेभ्यः ॥

जगज्जातं यतश्चेदं यश्चात्रास्ति ततं सदा ।
निमितकारणं यश्च सैवोपादान कारणम् ॥

॥ सृष्ट्युत्पत्तिनामा प्रथमोऽध्यायः ॥

'एकोऽहम् बहुस्याम्'– परब्रह्म परमात्मा को अनेक रूपों में प्रकट होने की स्फुरणा हुई । प्रथम, जल, पृथ्वी, आकाश, वायु और अग्नि – इन पाँच तत्त्वों की रचना हुई । तत्पश्चात् अनेक लोकों को उत्पन्न करने से पूर्व उनकी सुव्यवस्था के लिए स्वयं परब्रह्म ने ब्रह्मा विष्णु और महेश – इन तीन रूपों को धारण किया । सृष्टि को उत्पन्न करनेवाले परमात्मा का एक रूप ब्रह्मा (प्रजापति) कहलाया । सृष्टि का पालन पोषण करने वाला रूप विष्णु कहलाया और प्रलय करनेवाला रूप शिव (रुद्र) कहलाया । अपने इन तीनों रूपों के माध्यम से परब्रह्म परमात्मा ने चौदह भुवनों के अनन्तर तथा अन्तर्गत अनेकों लोकों और सृष्टियों की रचना की । उन सभी सृष्टियों में असंख्य प्रकार के जलचर, खेचर और थलचर प्राणी उत्पन्न किए । शास्त्रों में कहा गया है कि भगवान् ने सर्वप्रथम मृत्युलोक की रचना की । उसमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म और दीर्घातिदीर्घ ऐसी चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने वाले जीवों की रचना की । इन असंख्य प्रकार के जीवों के उत्पन्न होने की भिन्न–भिन्न प्रणालियां हैं । मनुष्य और पशु पिंडज हैं, भाँति–भाँति के पक्षी व मत्स्यादि अंडज हैं, तथा पसीने से उत्पन्न होनेवाली जूं स्वेदज है । बिना संगम के उत्पन्न होने वाले जीवों की भी बड़ी सृष्टि है । कहीं दो तो कहीं चार, कहीं आठ तो कहीं दस तथा कहीं सौ पावों वाले जीव हैं तो कहीं बिल्कुल पैर–विहीन जीव हैं । इन सबमें कई विषैले जीव हैं तो कहीं अमृत–सम फल देने वाली अद्‌भुत जीव–सृष्टि है । नाना प्रकार के फल–फूलों, वृक्षों, लताओं, पौधों, क्षुप, अन्न, घास इत्यादि धरती फोड़ कर निकलने वाली अष्टादशभार वनस्पति की उत्पत्ति उद्भिज कहलाती है । यह वनस्पति–सृष्टि भी अति विचित्र है । इसमें सजीवन करने वाली जड़ी–बूँटियां व अमृत–सदृश फल वाली वृक्ष–लताएँ हैं, तो कंटकयुक्त विषैले पेड़ पौधे भी हैं । इस प्रकार इस सृष्टि की रचना व रचनाकार का वर्णन कल्पनातीत है । ऐसा लगता है मानो जगन्नियन्ता जादूगर ने एक खेल रचा है । शून्य में से सब कुछ सृजित किया है ।

॥ इति श्री तपोनिष्ठपुराणे सृष्ट्युत्पत्तिसंज्ञकः प्रथमोऽध्यायः ॥
॥ शुभं भवतु ॥ कल्याणमस्तु ॥

।। अथ श्रीतपोनिष्ठपुराणे देवभूमि (भारतभूमि)-तीर्थमहिमवर्णनोनामाद्वितीयोऽध्यायः ।।

।। श्री काशी विश्वनाथो जयति ॥

निगमादि शास्त्रों में वर्णन किया गया है कि जगन्नियन्ता ने देवों के रमण–भ्रमण और निवास के लिए सर्वप्रथम भारतभूमि को उत्पन्न किया । यहीं समग्र देवों का वास था, अतएव इसे देवभूमि भी कहा जाता है । विश्व का समस्त ऐश्वर्य इसको प्रदान किया । भारतभूमि विधि–निषेध का अद्भुतालय है । इस सौन्दर्यधाम को विश्व का स्वर्ग कहा गया है । यहां तीर्थराज प्रयाग का त्रिवेणी–संगम, विश्व की समस्त विद्याओं का केन्द्रस्थान भगवान् विश्वनाथ की काशी नगरी तथा जगत् का कल्याण करने हेतु महामहिमामय भगवती गंगा का अवतरण–स्थान हरिद्वार जैसे अनेक पावन तीर्थस्थान सृष्टि–निर्माण के समय से ही श्री ब्रह्माजी ने प्रदान कर दिए थे । त्रिविष्टप से अवतरित भगवती गंगाजी के रमणीय तटों पर चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्मर्षि तथा महर्षिगण तत्त्व–चिन्तन कर रहे हैं । कहीं वेदगान हो रहा है तो कहीं तप हो रहा है । इन्हीं ऋषियों के पावन आश्रम ही तीर्थस्थान कहलाते हैं, जहाँ जिज्ञासुगण आकर ज्ञानपिपासा शान्त करते हैं । ऐसा ही एक पावन तीर्थस्थान सरयू–सरिता के तट पर अयोध्यापुरी है जहाँ पृथ्वी का भार उतारने, दुष्टों का दमन करने व मर्यादा स्थापन करने के लिए भगवान् ने रामरूप में अवतार लिया था :

दशरथसुतं देवं दशमुखादिविमर्दनम् ।
कौशल्यापरमानन्दं रामं वन्दे जगद्गुरुम् ।।

भारतवर्ष में ऐसे अनेक तीर्थस्थान नदियों के तटों पर तथा अर्बुदाचल, विन्ध्याचल और हिमालय आदि पर बने हुए हैं जहाँ जगत्–कल्याणार्थ सहस्रों ऋषि–मुनि तपस्यारत हैं । इन आश्रमों व तीर्थों का वर्णन वाणी द्वारा करना असम्भव है । इन पावन नदियों व आश्रमों के दर्शन–मात्र से मनुष्य पापमुक्त हो जाता है ।

।। इति श्री तपोनिष्ठपुराणे भारततीर्थमहिमनामा द्वितीयोऽध्याय ॥
।। इति शुभम् ॥ कल्याणमस्तु ।।

।। अथ श्री तपोनिष्ठपुराणे
मरुधन्वप्रदेशोत्पत्तिवर्णननामा तृतीयोऽध्यायः ।।

।। आदिगुरवै श्रीशंकराय नमः ॥
श्री रामचन्द्राय नमः ॥

मंगलरूपतिलक रज मस्तक, मरुभूमि साष्टांग प्रणाम ।
गणपति शारदईश गाइजे, जननी जन्मभूमि जय काम ।।

भारत के पश्चिम भूभाग में एक ऐसा अद्भुत प्रदेश है जिसकी समानता कोई दूसरा प्रदेश नहीं कर सकता । प्रकृति ने यहाँ निराले खेल खेले हैं । अवश्य ही वह वर्णनातीत है । फिर भी सुधीजनों ने अपनी–अपनी मति अनुसार जैसा देखा और सुना, वैसा वर्णन किया है । ये सारे वर्णन अति विस्तृत हैं । यहां तो मात्र सारांश में विषय को स्पष्ट कर देने वाली मुख्य–मुख्य बातों तथा स्थानों का ही वर्णन किया जा रहा है ।

इस प्रदेश का नाम 'मरुधन्व' है । भगवान राम के आग्नेयास्त्र से उत्पन्न 'मरी हुई भूमि' का पुराणों आदि में वर्णन है । भगवान् राम ने लंका पर चढाई करने के लिए समुद्र से मार्ग माँगा । प्रतीक्षा करते तीन दिन हो गए, पर समुद्र ने भगवान् की प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया । आदेश दिया तो भी परवाह नहीं की । भगवान् ने विचार किया कि जड़ बुद्धि वालों की जड़ता का नाश करने के लिए उनके लक्षणानुसार की शिक्षा दिए बिना उनकी बुद्धि ठिकाने नहीं आती । ऐसा सोच कर मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामने अपनी सेना को सावधान किया और आग्नेयास्त्र का प्रयोग करके समुद्र को सुखा देने का निश्चय किया । समस्त पृथ्वी के ..व, नदी, पर्वत, वनस्पति का नाश कर बीजरहित बनाने वाले तथा समुद्र को सुखा देने वाले भयंकर आग्नेयास्त्र का ज्यों ही राम धनुष पर संधान करने लगे कि समुद्र नर रूप धारण कर पूजा–अर्चना की सामग्री के साथ उपस्थित हुआ । जलाध्यक्ष वरुण और पृथ्वी ने भी साक्षात् उपस्थित होकर करबद्ध प्रार्थना की – ''भगवन् ! आप अपना यह रुद्र स्वरूप शान्त करिए तथा हमारे अपराध क्षमा कर दीजिए । हम तो जड़ पदार्थ है, जड़ता हमारा मुख्यगुण हैं । आप तो कृपासिन्धु मर्यादा–पुरुषोत्तम हैं । हम आपकी शरण हैं । हमारी मूढ़ता को लक्ष्य कर हमारा विनाश न कीजिए ।''

''भगवन् ! आपकी सेना में नल–नील नामक दो भाई वास्तु–विज्ञान के बड़े विशेषज्ञ हैं । आपकी उत्तम भक्ति के प्रताप से आपका मोक्षदाता नाम लेकर समुद्र में डाले हुए पाषाणखण्ड, जल में नहीं डूबकर, तैरते रहेंगे और परस्पर जुड़ जाएँगे । नल–नील के निरीक्षण में यदि आपकी सेना द्वारा पत्थरों को समुद्र में डाला जाएगा तो शीघ्र ही एक सुन्दर विशाल सेतु बन जायेगा । इसी आशय से हम लोगों ने आपके पधारने के पूर्व ही तट पर मैनाक, पर्वत के असंख्य खण्डों को तुड़वा कर ढेर लगा रक्खा है । हमारी जड़ता के लिए आप हमें एक बार पुनः क्षमा कर दीजिए ।''

करुणासिन्धु भगवान् राम ने समुद्र, पृथ्वी और वरुण को अभय वचन दिया

तथा उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया ।

एक ओर भगवान् की आज्ञा से नल–नीलने सेतु बनाने का अपना कार्य आरंभ किया तो दूसरी ओर समुद्र ने पुनः भगवान से प्रार्थना की कि अर्बुदाचल क्षेत्र, पुष्करारण्य और वाराह क्षेत्र जो आद्याचल की तपोभूमि का अत्यन्त पवित्र भूभाग है, जहाँ सृष्टि का सर्व प्रथम निरीक्षण करने के लिए ब्रह्माजी मातेश्वरी सावित्री के साथ इस क्षेत्र के पुष्कर में पधारे थे, तथा जहाँ सहस्रों ऋषि–मुनि समुद्र की गहनता के अति न्यूनातिन्यून स्थल पर तपस्या में रत हैं, ऐसे इस पुण्य क्षेत्र के पश्चिम की ओर एक सहस्र गाउ प्रमाण अति गहरा समुद्र है । वहाँ अपने संधानित आग्नेयास्त्र की अमित शक्ति को कुछ कम करके छोड़ दीजिए, जिससे जलचरादि प्राणियों की तो रक्षा हो जाए तथा एक भूकम्प उठ कर न्यूनाति जलवाली पृथ्वी उभर आए ।'' भगवान् राम ने तथास्तु कह कर आग्नेयास्त्र की शक्ति को कुछ कम करते हुए संधानित अस्त्र का उस ओर प्रक्षेपण किया ।

तुरन्त ही समुद्र में एक व्यापक हलचल सी मची और सैकड़ों योजन प्रमाण भूमि जल से उभर कर बाहर निकल आई । सर्वत्र भगवान् की जयजयकार होने लगी । शरण में आए वरुण, समुद्र व पृथ्वी अतीव प्रसन्न होकर तथा भगवान् से अभय वरदान पाकर कर जोड़ स्तुति करने लगे :

लोकाभिरामं रणरंगधीरं राजीवनेत्रं रघुवंशनाथम् ।
कारुण्यरूपं करुणाकरं तं श्रीरामचन्द्रं शरणं प्रपद्ये ॥

ब्रह्मस्वरूपो जगतां विधाता मुक्तिप्रदाता धृतदिव्यरूपः ।
कल्पान्तरुद्रात्मकतां दधानः श्रीरामचन्द्रः शरणं ममास्तु ॥

'भगवान् ! आपने हमारी जड़ता दूर कर हमें जीवनदान दिया । आपकी सदा जय हो !' इस प्रकार जयजयकार करते तीनों अपने–अपने स्थानों को चले गए । इधर भगवान् राम ने अपने इष्टदेव भगवान् शंकर की स्थापना कर, पूजा–अर्चना की । सेतु बाँधने के पूर्व ही नल–नीलने एक भव्य मन्दिर निर्मित कर दिया था, जहाँ भगवान् शंकर की प्रतिष्ठा की गई, जो आगे चलकर रामेश्वरम् नाम से जग–विख्यात तीर्थधाम बना । भगवान् राम रामेश्वरम् से विजय प्राप्त करने व सकुशल लौट आने का वरदान प्राप्त कर, नल–नील द्वारा निर्मित सेतुबन्ध से लंका पहुँच गए ।

भगवान् श्रीराम और लंकाधिपति रावण की सेनाओं के बीच घमासान युद्ध हुआ, जिसमें राक्षस–सेना के असंख्य राक्षसों सहित महाबली रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि का संहार करके तथा रावण के भाई भक्तवर विभीषण को विधिवत् लंकेश बना कर जगजननी सीताजी के साथ श्रीराम चौदह वर्ष की अवधि की समाप्ति पर हनुमानादि के साथ पुष्पक विमान में बैठ कर अयोध्या लौट आए ।

भगवान् राम के आग्नेयास्त्र से उत्पन्न मृततुल्य, बीजहीन, क्षार भूमि आद्याचल (अपर नाम ''आदिवलय'' ''आडोवलो'' की तपोभूमि का ऋषिगणों ने 'मरुधन्व', 'मरुभूमि' इत्यादि नामकरण किया ।

॥ इति श्री तपोनिष्ठपुराणे मरुभूमेरुत्पत्तिनामा तृतीयोऽध्यायः ॥
॥ इति शुभम् ॥

।। श्री गणेशाय नमः ॥ श्री काशीविश्वनाथाय नमः ।।

।। अथ श्री तपोनिष्ठपुराणे भगवता रामचन्द्रेण मरुधन्वभूम्ये शरस्थश्यामल-द्रुमकल्यार्थं वरप्रदानम् । तस्या श्रेष्ठता तथा सरस्वतीनद्याः भूमावबतरणं तपोभूमिवर्णनञ्चेति नाम्ना चतुर्थोऽध्यायः ।।

''अपने अमोघ आग्नेयास्त्र से उभर कर आई इस क्षार वाली भूमि में बसने वाले मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों इत्यादि पर असाध्य रोगों का आक्रमण नहीं होगा, यहाँ का अन्न–तृण पुष्टिकारक होगा, गोधन हृष्ट–पुष्ट होगा और अधिक दूध देनेवाला होगा, घृत शक्तिदायक व बुद्धिप्रद होगा, गोमय सुगंधियुक्त तथा विषनाशक होगा और इसी प्रकार गोमूत्र पाप व क्षयनाशक तथा उदरकष्टनिवारक होगा, पंचगव्य पुष्टिकारक व रोगनिवारक होगा, मनुष्य बलवान, निर्भय, निष्कपट तथा तपोनिष्ठ होंगे''– इस प्रकार भगवान् ने अपने मंगलकारी विरुद की घोषणा की ।

समुद्र के सूख जाने से पतित पावनी सरस्वती के प्रवाह ने इस भूमि को तीर्थभूमि बना दिया । यह ऋषियों की तपोभूमि बन गई तथा सभी प्रकार के वृक्षों, द्रुमों, लताओं तथा खाद्यान्नों से शोभित व पूरित हो गई । सर्व प्रकार के सुख–साधनों से सम्पन्न इस नवोदित भूभाग का नाम द्रुमकल्य हो गया । सरस्वती के पुण्य प्रवाह से व समुद्र के सूख जाने से अर्बुदाचल के तीर्थों की महिमा अधिक महिमावंत हो गई ।

अर्बुदाचल क्षेत्र के तीर्थो आदि का संक्षिप्त वर्णन अगले अध्याय में है ।

।। इति श्रीतपोनिष्ठपुराणे मरुकान्ताभूमौ भगवतो रामचन्द्रस्य वरेण सरस्वतीनद्या अवतरण–द्रुमकल्यनामकरण–तस्याः श्रेष्ठता–वर्णनात्मकश्चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ ॐ श्री विश्वनाथो जयति ॥

॥ ॐ श्री तपोनिष्ठपुराण मध्ये वर्णिताद्याचलस्य सर्वोच्च शिखरार्बुदाचलस्य तथा तत्संसक्ति पर्वतमालासु स्थितानां तपोभूमितीर्थानां वर्णननामा पञ्चमोऽध्यायः ॥

सृष्टि की उत्पत्ति के समय उत्पन्न होनेवाले पर्वतों में आद्याचलम् का सर्वप्रथम उत्पन्न होना वेदशास्त्रों में वर्णित है । इसको आदिवलय भी कहा जाता है जो आद्याचल का पर्याय है ।[1] आद्याचल की पर्वतमाला के एक सर्वोच्च शिखर का नाम अर्बुदाचल है । अर्बुद नामक एक भीमकाय नाग का निवास होने के कारण इस शिखर का नाम अर्बुद पड़ गया– ऐसा शास्त्रविदित है । इसके पूर्व यह नाग पुष्कर क्षेत्र की अर्बुद–शिखर–श्रृंखला के नाग पर्वत पर रहता था ।[2] अर्बुदाचल से पुष्कर तक का यह विशाल भूभाग अर्बुदाचल क्षेत्र कहा गया है ।

इसके इस विशाल क्षेत्र में अनेक तीर्थस्थान आए हुए हैं । समग्र आद्याचल क्षेत्र में तो असंख्य छोटे–मोटे तीर्थस्थान हैं, परन्तु अकेले अर्बुदाचल पर ही शताधिक तीर्थस्थान पुराणकाल के पूर्व से ही शास्त्रों में वर्णित हैं । भारत के किसी भूभाग में इससे अधिक तीर्थस्थान कदाचित् ही कहीं हों । आबू पर्वत का सर्वाधिक सौन्दर्यधाम ''देवाजिर'' है ।[1] पृथ्वी के आदिकाल से पितामह ब्रह्माजी ने स्थापत्य कला के आदिदेव विश्वकर्मा को आदेश देकर एक अद्वितीय तपोभूमि का निर्माण करवाया था, जहाँ संसार के सर्वोत्कृष्ट तपोनिष्ठ ब्राह्मणों ने सैंकड़ों वर्षों की तपस्या के द्वारा वरदान प्राप्त किए थे । इसी तपोभूमि में भगवान् विष्णु व देवाधिदेव भगवान् शंकर एवं देव–देवियों के लिए सुरम्य भवनों व उपवनों का निर्माण भी श्री विश्वकर्माजी ने करवा दिया था । यहाँ जगत् के महामित्र भगवान् भुवन--भास्कर के दो मन्दिर तो अद्वितीय हैं ।[2] अर्बुद की तलहटी में सर्व प्रथम निर्मित 'वरमाण' ब्रह्माण्ड--स्वामी भगवान् सूर्यनारायण का विशाल रथाकार

---

१. आद्याचल और आदिवलय-दोनों शब्द ''आडोवलो'' के संस्कृत रूप हैं । राजस्थानी में 'वळो' नाम पर्वत का है जो संस्कृत के 'वलय' का अपभ्रंश है ।

२. 'नाग और अर्बुद समानार्थी हैं । नाग पर्वत पुष्कर क्षेत्र में आया हुआ है ।

१. 'देवाजिर' ही आज का प्रसिद्ध 'देवांगण' है । देव + अजिर (= देवताओं का आंगन) ।

२. ''क्रोड़ीध्वज'' (कोटिध्वज) के टूटे फूटे सूर्य मन्दिर अद्वितीय हैं । कहा जाता है कि मन्दिर की सूर्यमूर्ति पर सूर्योदय से सूर्यास्त तक सूर्य का प्रकाश पड़ता है । एक अन्य मन्दिर की कमलासन सूर्यमूर्ति सूर्य के प्रकाश के साथ घूमती रहती है । कहा जाता है कि इस मन्दिर का कला सौन्दर्य अद्वितीय है । आबू पर्वत के दिलवाड़ा के जैन मन्दिरों की छतों की कलाकृति ब्रह्माण के सूर्य मन्दिर की प्रतिकृति है । फिर भी इसकी तुलना में नहीं बैठती । कोणार्क और दक्षपुर के रथाकार सूर्य मन्दिर, वरमाण मन्दिर की प्रतिकृतियाँ है, ऐसा माना जाता है ।

मन्दिर जगत् का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर रहा है ।

आबू पर्वत पर अनेक छोटे–मोटे सुन्दर जलाशय, कुण्ड, झरने इत्यादि हैं, जिनमें सदैव पानी भरा रहता है तथा प्रवाहित रहता है । इन सब में नक्खी सरोवर बड़ा है । इसके तट पर अनेक ऋषियों के आश्रम हैं । बहुत दूरी पर विशाल मन्दाकिनी कुण्ड है जिसका जल मन्दाकिनी (गंगा) के समान पवित्र माना जाता है । कुण्ड के विभिन्न घाटों पर अनेक ऋषि आश्रम हैं जहां तपस्या रत ऋषिगणों के दर्शन होते हैं । इससे थोड़ी दूर पर एक रेवती कुण्ड है । इनके अतिरिक्त ब्रह्मकुंड, रामकुण्ड आदि अनेक कुण्ड व कूपादि यत्रतत्र बने हुए हैं जिनकी सुन्दरता अवर्णनीय है । अर्बुदाचल का गुरुशिखर, पर्वतमाला का सर्वोच्च शिखर हैं जहां भगवान दत्तात्रेय के चरण एक मन्दिर में स्थापित हैं । यहां का दृश्य अत्यन्त मनमोहक है । दूर क्षितिज में सूर्योदय के दर्शन अत्यन्त भव्य हैं । सृष्टि के परमोपकारक तिमिरनाशक ब्रह्माण्ड स्वामी के अवर्णनीय रूप के दर्शन कर प्राणी धन्य हो जाते हैं । दत्तगुरु की पावन तपोभूमि के दर्शनों से मनुष्य पापमुक्त हो जाता है । भगवान् विष्णु ने भी अपना वास–स्थान यहां बनाया था ।[३] इसके पूर्व में कुछ समय तक वहाँ भगवान् ने निवास किया था; तलहटी का यह भव्य स्थान 'ऋषिकेश' नाम से विख्यात है । अत्यन्त रमणीक स्थान है यह ।

सैकड़ों फीट नीचे उतरने पर अर्बुदाचल का जगविख्यात अति विशाल एवं अति भव्य वशिष्ठाश्रम स्थित है जो स्वर्ग के नन्दनवन की शोभा को भी ढँक दे । सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा ही है महर्षि वशिष्ठ का यह आश्रम जो ऋषि–मुनियों का पवित्र संगम–स्थल है । बहुत विशाल तपोभूमि में महर्षि अत्रि का अत्यन्त प्राचीन आश्रम भी यहाँ बतलाया जाता है । भरद्वाज, गौतम आदि ऋषियों के सुन्दर आश्रम भी यहां हैं । यहां किसी समय ब्रह्मनिष्ठा महातपस्विनी गार्गी, अनसूया इत्यादि अनेक मन्त्र द्रष्टा ऋषिकाओं के आश्रम भी थे । यहीं पर एक शिखर–तल में गुल्मों–लताओं से आच्छादित अति मनोहर स्थान में भगवान् द्वैपायन व्यास का आश्रम स्थित है जिन्होंने अठारह पुराणों के पूर्व यहाँ की तपोभूमि से प्रभावित होकर तपोनिष्ठ पुराण की रचना की थी । यहाँ एक पर्वत से गोमुख आकार के विवर से निरन्तर जल बहता रहता है ।[४] यहीं महर्षि वशिष्ठ का अति प्रसिद्ध सुन्दर अग्निकुण्ड है ।[५] पास ही में महर्षि वशिष्ठ, उनकी धर्मपत्नी अरुन्धती तथा उनकी नन्दिनी गौ भी साक्षात् रूप में शोभित हैं ।

वशिष्ठाश्रम, देवाजिर और हृषीकेश आदि अनेक तपोभूमियों के अतिरिक्त ऊपरी भाग में भी अनेक ऋषिआश्रम व तपोभूमि खण्ड हैं जिनमें दो स्थान विशेष वर्णनीय हैं । पुष्कर क्षेत्र के अपने नाम से प्रसिद्ध नागपर्वत से आकर महानागराज अर्बुद ने आदिवलय के सर्वोच्च शिखर पर निवास किया, जिससे उस शिखर का नाम जगत् में अर्बुदाचल प्रसिद्ध हुआ । अर्बुद अपनी योनि से निस्तार पाने के लिए तपस्या में लीन हो गए । उधर महाकाय अर्बुद की धर्मपत्नी अर्बुदादेवी भी यहां आकर एक

३. ऐसा कहा जाता है कि भगवान् विष्णु ने यहाँ भगवान् शंकर की आराधना की थी । उस स्थान को वास स्थान कहते हैं । यहाँ एक बहुत लम्बी भीमकाय गुफा है जिसमें भगवान् विष्णु की १८ फीट लम्बी, १२ फीट चौड़ी और ६ फीट ऊँची शेषशायी प्रतिमा है ।

गुफा में तपस्यालीन हो गई । अर्बुद और अर्बुदा की तपस्या व भक्ति पर अति प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रकट हुए और अर्बुद को वरदान दिया कि तुम मेरे कंठाभूषण बनकर अविरत मेरे पास रहोगे । देवि अर्बुदे ! तुमने भी बहुत कष्ट सहे हैं । मैं तेरी पतिभक्ति और साथ ही मेरी भक्ति से अति प्रसन्न हूँ । तू नागयोनि से मुक्त होकर इसी गुफा में महादुर्गा के कल्याणकारी रूप में प्रतिष्ठित होगी । तेरी भक्ति करने वाले अभयपद पाएँगे । महानागराज अर्बुद को मैंने अपने गले का श्रृंगार बनाया है; जब इच्छा करोगी मेरे रूप में तुझे उसके दर्शन होंगे ।'' अर्बुदा तत्काल ही दुर्गा के रूप में परिवर्तित हो गई और अर्बुद एक महायोगी के रूप में परिवर्तित होकर दोनों भगवान् के चरणों में लोट गए और बारम्बार गद्‌गद् होकर प्रार्थना करने लगे । भिन्न–भिन्न प्रकार से स्तुति करते हुए उन्होंने करबद्ध निवेदन किया कि आप स्वर्ग, पाताल और मृत्युलोक के तीनों भिन्नभिन्न रूपों का एक अद्वितीय रूप बन कर यहां निवास करने की कृपा करें । भगवान् शंकर के एवमस्तु कहते ही अर्बुदा इस पर्वत शिखर की अधिष्ठात्री देवी के रूप में तथा अर्बुद शेष के रूप में भगवान शंकर के साथ अन्तर्ध्यान हो गए । इन दोनों के पावन नाम से इस पर्वत की जग में 'अर्बुदाचल' नाम से ख्याति हुई ।

दूसरा अति विख्यात उत्तमोत्तम स्थान ''अचलेश्वर'' नाम का है । भगवान् शंकर का यहाँ अचल निवास होने के कारण वे अचलेश्वर कहलाए और इस शिखर का नाम अचल हो गया । भगवान् शंकर को अचल (पर्वत) पर निवास करना अतिप्रिय है । जगत् में भगवान् के इस अद्भुत व अद्वितीय तीर्थ स्थान की तथा भगवद्दर्शन की बड़ी महिमा है ।

अर्बुदाचल के अनेक शिखरों पर तथा प्रत्येक शिखर तल में अनेकों तीर्थों और तपोनिष्ठ ऋषि–मुनियों के ज्ञात–अज्ञात पावन आश्रम स्थित हैं जिनका वर्णन करना अति कठिन कार्य है । भगवान् व्यासदेव द्वारा रचित इस पुराण के अतिविस्तृत वर्णन को मैं, भवनिधि, लिखने में असमर्थ हूँ ।

॥ इति श्रीतपोनिष्ठपुराणे आदिवलयस्यार्बुदाचलस्य महिमनामा पंचमोऽध्यायः ॥ इति शुभम् ॥ कल्याणमस्तु ॥

।। सृष्टि रचयिता पितामह भगवान् ब्रह्मदेवो जयति ।।
।। श्री विश्वनाथो जयति ।।

।। अथ श्रीतपोनिष्ठपुराणे भगवतो ब्रह्मणः सृष्टि निरीक्षणार्थं पुष्करारण्यक्षेत्रे प्रथमअवतरण-तपोनिष्ठ ब्राह्मणोत्पत्ति-पुष्कर माहात्म्यवर्णननामा षष्ठोऽध्यायः ।।

आद्याचल के विशाल क्षेत्र का दूसरा आदि सौन्दर्यधाम शास्त्रों में पुष्करारण्य को बताया है । सृष्टि–रचना के बाद सृष्टि का सौन्दर्य–निरीक्षण करने हेतु महामाया और वाणी का संघरूप भगवती सावित्री के साथ पितामह ब्रह्माजी का सर्व प्रथम पुष्कर की इस पावन भूमि में अवतरण हुआ । अतएव इस रमणीय तीर्थधाम को तीर्थगुरु कहा जाता है । इसके थोड़े पश्चात् परब्रह्म परमात्मा की पालन–शक्ति के रूप भगवान् विष्णु तथा संहार–शक्ति के रूप भगवान् रुद्रने सृष्टि का निरीक्षण करने के लिए सौन्दर्यधाम अर्बुदाचल पर अवतरण किया ।

ब्रह्म और उसकी माया के दम्पति रूप ने अपनी निर्माण क्रिया के आदिस्थल की पवित्रता, सुन्दरता तथा सरोवरों पर तपस्या करती हुई तपोमूर्तियों को तथा सरोवरों से निःसृत प्रवाहों को देख कर ब्रह्माजी और सावित्रीजी अत्यन्त प्रसन्न हुए । ब्रह्माजी ने यहां थोड़ी–थोड़ी दूरी पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामक तीन सरोवरों की रचना की, जिनके दर्शन व उनमें मज्जन करने की शास्त्रों में बहुत महिमा है । सर्व तीर्थों की यात्रा, स्नान, दर्शन करने का फल यहाँ के ही समस्त तीर्थ–स्थानों के दर्शन व स्नान करने से ही प्राप्त होता है । यहां देवताओं और ऋषियों के लिए पर्वतों और तपःस्थलों पर अनेक सरोवरों, नदी–नालों का निर्माण कराया गया है, जिनके तटों पर कई ऋषि–मुनि तपस्या कर रहे हैं । पर्वत–तल में अगस्त्य ऋषि का भव्य आश्रम है । पास ही में अगस्त्य कुण्ड है । पुष्कर क्षेत्र के समस्त तीर्थों के दर्शन और सभी सरोवरों में स्नान करके अन्त में अगस्त्य कुण्ड में स्नानादि करने पर यहां की यात्रा पूर्ण मानी जाती है । यज्ञ पर्वत के पास नाग पर्वत है, जहाँ अर्बुदनाग का निवास–स्थान था । तलहटी में मनोहर नागकुण्ड है । इसके पास ही चन्द्रकुण्ड, सूर्यकुण्ड, पद्मकुण्ड गंगाकुण्ड नाम के बहुत पवित्र कुण्ड हैं । नागपर्वत से जो नदी निकलती है, उसका नाम प्राची–सरस्वती है, जो आगे चल कर सरस्वती में मिल जाती है । दोनों नदियों का प्रवाह आगे जाकर नाग पर्वत से निकला हुआ ही प्रसिद्ध हुआ । श्री ब्रह्माजी के अति प्रिय इस पुष्कर क्षेत्र की भक्तिपूर्वक यात्रा की महिमा तथा उसके द्वारा निर्मित तीनों पुण्य सरोवरों का माहात्म्य अमिट है :

दुष्करं पुष्करं गन्तुं दुष्करं पुष्करे तपः ।
दुष्करं पुष्करे दानं वस्तु चैवं सुदुष्करम् ।।
त्रीणि श्रृंगाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्रवणानि च ।
पुष्करादीनि सिद्धानि न विद्यस्तत्र कारणम् ।।

पितामह और पितामही के सरोवरों के निकट पहुँचते ही, सरोवर और सरस्वती के जलने हर्षोन्माद से उमड़ कर के चतुर्मुखारविन्द ब्रह्माजी का पदार्पण होते ही पदारविन्दों का प्रक्षालन करके अपने आपको पवित्र बनाया । तब इन जलाशयों के पुनीत तटों पर तपस्या करने वाले ऋषि–मुनियों ने आकर साष्टांग प्रमाण करके चरणामृत–पान किया । इधर ब्रह्मचारिणी योगिनी ऋषिकाओं ने आकर आदिदेव ब्रह्माजी व महामाया सावित्री के चरणों में प्रमाण किया और सभी एक साथ स्तुति करने लगे :

ब्रह्मस्वरूपो जगतांविधाता विश्वप्रमाता धृतविष्णुरूपः ।
कल्पान्त रुद्राख्यतनुश्च यो हि नमाम्यहं तं सद्ब्रह्मरूपम् ॥
यतो वेदवाचो विकुण्ठामनोभिः सदा नेति नेतीति ये तं गृणन्ति ।
परब्रह्मरूपं चिदानन्दभूतं सदा तं वरेण्यं नमामि भजामि ।।

वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो,
वयं त्वां जगत् साक्षिरूपं नमामः ।
त्वदेकं निधानं निरालम्बमीशम्
भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः ॥

ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर कहा– "हे ऋषिगणो ! ब्राह्मणों में आप सर्वोद्य हैं । अर्बुदाचल क्षेत्र के अत्यन्त सौन्दर्यधाम देवाजिर में आपके लिए पहले से ही एक स्थान निर्मित है । वहाँ जाकर आप तपस्या कीजिए । वहीं भगवती लक्ष्मीजी सहित प्रजापालक विष्णु के दर्शनों से आप लोग कृतार्थ होंगे । आपके सारे मनोरथ पूर्ण होंगे । यह निश्चित है कि मैं पुष्कर में ही निवास करूंगा । आप लोग जब कभी आएँगे, मेरे साक्षात् दर्शन हो सकेंगे । आप जहाँ कहीं भी रहेंगे, आपकी ब्रह्माराधना के कारण संसार में 'तपोनिष्ठ ब्राह्मणों' की संज्ञा से प्रसिद्ध होंगे ।[1]

।। इति श्री तपोनिष्ठ पुराणे पुष्करारण्य क्षेत्रमहिम–तपोनिष्ठ ब्राह्मणोत्पत्तिनामा षष्ठोऽध्यायः ।। इति शुभम् ।। कल्याणमस्तु ।।

---

१. **कई ऋषिगण निर्वाहपूर्ति के लिए गृहस्थ बनकर ब्राह्मण कर्म अथवा धर्म का पालन करने लगे । उनमें जो पुष्कर क्षेत्र के निकट रहे, वे पुष्करणा कहलाए और जो दूर लाट देश (आज का गुजरात) में चले गए, वे तपोधन कहलाए ।**

।। ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।। श्रीविश्वनाथो शरणः ममास्तु ।।

।। अथ श्रीतपोनिष्ठपुराणे पितामहब्रह्मण आज्ञया भगवतो विष्णोः दर्शनार्थं तपोनिष्ठ ब्राह्मणानामर्बुदाचलस्य देवाजिरे तपः प्रारम्भः लक्ष्म्या सहितस्य भगवतो विष्णोः प्राकट्यं दर्शनदानञ्च, तेषामभीप्सितपूर्तिः उत्तमदेवधातु–तदुपयोगस्य च वरं दत्त्वा भगवतोऽन्तर्धानं, तथा परोक्षरूपेण सदैव

तत्रावस्थितेरभिव्यक्तिश्चेति प्रतिपादनपरः सप्तमोऽध्यायः ।।

पितामह भगवान् के वरदान से अति प्रसन्न होकर कुछ महर्षियों व ऋषिकाओंने अर्बुदाचल के लिए प्रस्थान किया । अर्बुदाचल के मार्ग में अवस्थित तीर्थधामों के दर्शन करते हुए कितने ही समय के बाद अर्बुदाचल पहुँचे । सृष्टि के प्रथम उत्पन्न पर्वत की सुन्दरता को देख कर वे अति प्रसन्न हुए । सुन्दर सरोवरों व निर्झरों के तटों पर एवं वृक्ष–लताओं की शीतल छाया में ध्यान–मग्न तपस्वियों व ऋषियों के दर्शन कर इन नवागंतुक ऋषि–ऋषिकाओं के आनन्द की सीमा नहीं रही । अनेक स्थलों पर अनेक ऋषिगण प्रपातों में स्नानादि प्रातःकालीन कृत्यों से निवृत्त हो गए थे । तभी इन नवागन्तुकों को देख इनके सम्मुख आकर सुख–स्वास्थ्यादि की पृच्छा कर स्वागत किया । पुष्प, फल आदि अर्पण कर परस्पर एक दूसरे को साष्टांग प्रमाण करके सभीने अपने को धन्य माना । इन आगन्तुकों को अनजाने के मार्ग में किसी प्रकार का कष्ट न हो, सुविधाजनक मार्ग से उनको गन्तव्य स्थान देवाजिर पहुँचा दिया । परस्पर एक–दूसरे से परिचय प्राप्त करते हुए तथा तत्त्व–चिन्तन करते हुए जब वे वहाँ पहुँचे तब देवाजिर के अपरिमित सौन्दर्य से मन्त्र–मुग्ध हो गए । वहाँ घड़ी भर ठहर कर तथा तपस्या–लीन अनेक ऋषियों का परिचय देकर, पहुँचाने आए हुए ऋषिगण अपने–अपने आश्रमों को चले गए ।

सुरभि लता–पुष्पों से आच्छादित अपनी–अपनी कुटियों की भव्यता, उनमें बने हवन–कुण्ड, एवं चारों ओर के प्राकृतिक वैभव को देख कर ये तपोनिष्ठ ब्राह्मण अति प्रसन्न हुए । इस देवाजिर तपोभूमि को देवताओंने अपनी दैविक शक्ति से वैभवमयी और रमणीय बनाने में कोई कसर नहीं रक्खी थी । देवताओं ने जब इन तेजोमयी जटाजूटधारी, गौर वर्ण, साक्षात् शिव रूप के समान ऋषियों के दर्शन किए, तो आश्चर्य–चकित हो गए । उन्हें अपनी सुन्दरता और वैभव तुच्छ लगने लगा । ऋषियों और ऋषिकाओं को प्रणाम कर स्तुति करते हुए कहने लगे कि आपकी अनिर्वचनीय कान्ति व शोभा के दर्शन कर हम लोग धन्य हो गए । हमारा देवत्व सफल हो गया । हम आपकी तपस्साधना में कभी विघ्न नहीं होने देंगे । ऋषियोंने उत्तर दिया कि "आप तो देव हैं, हम साधारण मनुष्य हैं । हमारे साथ आपने जो अत्युत्तम व्यवहार किया है, वह आपके देवत्व का परिचायक है । हम आपको प्रमाण करते हैं । आपकी सदा

जय हो ।''

देवताओं के चले जाने पर ऋषिगण अपनी तपस्या में लीन हो गए । अर्बुदाचल के अनेक ऋषिगण इनकी तपश्चर्या से प्रभावित होकर तथा दर्शन कर स्वभावतः खूब हर्षित हुए । वे कहने लगे कि इनके आगमन तथा इनकी तपश्चर्या के बल से समस्त पर्वतीय क्षेत्र का वातावरण ही ऐसा बदल गया है कि मानों हम किसी अन्य लोक में रह रहे हों । पर्वत पर के निर्झर अति मनोहर लगते हैं । वे इस प्रकार आगे बढ़ रहे हैं मानों किसी का स्वागत करने की उमंग में दौड़ रहे हैं । वृक्ष नव-पल्लवित हो गए हैं और लताएँ पुष्पित होकर वृक्षों पर लिपट कर तादात्म्य का अनुभव कर रही हैं । इन तपोनिष्ठ ऋषियों के आगमन से अर्बुदाचल नाच उठा है । ब्रह्मचर्य, भक्ति व तपस्या का त्रिगुणात्मक प्रभाव ही अकथनीय है । समस्त अर्बुदाचल के ऋषिमुनि, तपस्वी अति प्रसन्न हैं । वे इन मूर्तियों के दर्शनों के लिए लालायित रहते हैं ।''

उधर वैकुण्ठ में भगवान् विष्णु को पितामह वेदीश्वर की बात का स्मरण हो आया । उन्होंने लक्ष्मीजी से कहा, ''देवी ! इन तपोनिष्ठ ब्राह्मणों की तपस्या से मेरा हृदय तृप्त हो उठा है । तुरन्त ही भक्त हितार्थ चलना होगा ।'' भगवती लक्ष्मी भी कुछ ऐसा ही अनुभव कर रही थी । उन्होंने कहा, मुझे भी कुछ ऐसा ही लग रहा था । कठिन तपश्चर्यारत इन सुकुमारियों की दशा तो अब सहन नहीं हो सकती । मैं तो कभी की आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में ही बैठी थी ।''

आज अर्बुदाचल और वहाँ तपस्या कर रहे ऋषिमुनियों के आनन्द की सीमा न थी । लक्ष्मीजी सहित विष्णु भगवान् का प्रथम बार साक्षात् रूप में वहाँ अवतरण हुआ है । सभी अपने आप को पूर्णकाम और धन्य मान रहे हैं और आगन्तुक तपोमूर्तियों की जयजयकार कर रहे हैं । वे मात्र अस्थिपंजर रूप किन्तु अत्यन्त स्वस्थ एवं प्रसन्नवदन हाथ जोड़े खड़े हैं । भगवान् विष्णु और जगदम्बा लक्ष्मीजी गद्‌गद् होकर बारबार उनको गले लगा रहे हैं । बारबार उनके मस्तक पर वरद पाणि रख रहे हैं । अन्त में भगवान् उनको सम्बोधित कर कहने लगे- ''पुत्रियो व वत्सगण ! तुम लोगों ने बहुत कष्ट उठाया है । हमें थोड़ा विलम्ब हो गया है । क्षमा करोगे न ?'' ऐसा सुनते ही वे सब भगवान् व लक्ष्मीजी के चरणों में गिर पड़े । भगवान् ने उन्हें अपने कर-कमलों से उठाया और कहा- ''बोलिए ! आपकी क्या इच्छा है ? आप जो माँगोगे, वही वरदान दूँगा ।'' तपोनिष्ठ ऋषियों और ऋषिकाओं ने कहा- ''भगवान् ! आज हमें सब कुछ मिल गया । त्रिलोक में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो आपके दर्शनों के अतिरिक्त माँगने योग्य हो ।''

भगवान् ने कहा- ''जगत् का भरण-पोषण करनेवाली जगन्माता लक्ष्मीजी सृष्टि की स्वामिनी हैं । मेरी और इनकी आराधना करनेवालों को हमने वर रूप में अतुल वैभव से विभूषित कर दिया है, पर इनका अपना कुछ नहीं । आज हमें यहाँ का अद्‌भुत सौन्दर्य, हवनकुण्ड और कुटियों की कलापूर्ण सजावट में निहित तुम्हारी सौन्दर्य-सृष्टि, तुम्हारी तपस्या, धीमता और व्यक्तित्व को देख कर यह लगा कि मनुष्यमात्र और देवताओं को भी मोहित करनेवाली देवधातु (स्वर्ण) से देवताओं के लिए स्वर्णाभूषण

निर्मित करने का कार्य आप लोगों जैसे सन्निष्ठ य कर्मठ व्यक्तिओं के सिवाय कोई व्यक्ति हमें दृष्टिगोचर नहीं होता । आप जहाँ चाहें, वहाँ जगन्माता का ध्यान कर कार्यारंभ कर दें । सभी देवगणों को भी यही हार्दिक इच्छा है । इसके अतिरिक्त जब कभी भी आप इसको छोड़ना चाह कर अन्य किसी कार्य में प्रवृत्त होंगे, तो आपको व आपकी सन्तति प्रति संतति को उसमें सम्पूर्ण सफलता मिलेगी ।''

महामाया लक्ष्मीजी ऋषिकाओं को देख कर कुछ कहना चाहती थीं कि अन्तर्यामी भगवान् उनकी इच्छा को जान कर कहने लगे– ''आभूषण निर्माण का या अन्य कोई कार्य गृहस्थ–संलग्न है । आज का दिन बड़ा शुभ है । असंख्य ऋषि, मुनि और देवता यहाँ उपस्थित हैं । ऐसा मंगलकारी अवसर फिर नहीं आयेगा । श्रीलक्ष्मीजी की इस इच्छा को पूर्ण करने में हम सभी को बड़ा हर्ष होगा । इस पाणिग्रहण की संसार में अमर कीर्ति होगी ।'' लक्ष्मीजी अपने मन की बात सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुईं । देवताओंने पुष्पवृष्टि कर जय–जयकार किया और सभी ऋषिगण हर्षित होकर भगवान् की स्तुति करने लगे । भगवान् के संकेत से देवताओं ने पाणिग्रहण की सभी साधन–सामग्री तत्काल वहाँ उपस्थित की और देवत् ऋषियोंने शुभ घड़ी में वेद–ऋचाओं का उच्चारण करते हुए अग्निदेव की साक्षी में यह अद्वितीय पाणिग्रहण संस्कार भगवान् विष्णु व मातेश्वरी लक्ष्मीजी के सम्मुख सम्पन्न किया । देवताओं ने पुनः पुष्पवृष्टि कर जयजयकार किया । सबने उनको आशीर्वाद दिए । उधर भगवान् विष्णु व मातेश्वरी लक्ष्मीजी के अर्बुदाचल के देवाजिर में पधारने की बात जान कर अपने–अपने लोकों से पितामह व भगवान् शंकर भी वहाँ उपस्थित हुए । वर–वधुओं को आशीर्वाद देकर वे सभी अन्तर्ध्यान हो गए ।

अक्षय तृतीया का यह शुभ दिन तपोनिष्ठ ब्राह्मणों का जन्म दिन माना जाएगा । उस दिन उनके घरों में मंगलाचार होंगे । भगवान् विष्णु, पितामह ब्रह्माजी व भगवान् शंकर की पूजा के मनोरथ–महोत्सव होंगे ।

।। इति श्रीतपोनिष्ठ पुराणे पितामहब्रह्मण आज्ञया भगवतो विष्णोः दर्शनार्थं तपोनिष्ठ ब्राह्मणनामर्बुदा चलस्य देवाजिरे तपः प्रारम्भः, लक्ष्म्या सहितस्य भगवतो विष्णोः प्राकट्यं दर्शनदानञ्च, तेषामभीप्सितपूर्तिः उत्तमदेवधातुतदुपयोगस्य च वरं दत्वा भगवतोऽन्तर्धानं तथा परोक्षरूपेण सदैव तत्रावस्थितेरभिव्यक्तिश्चेति प्रतिपादनपरः सप्तमोऽध्यायः ।। इति शुभम् ।।

गोत्र व गोत्रकार

परिशिष्ट-१

गोत्र

गोत्र का सामान्य अर्थ होता है संतान, वंश, भाई अथवा कुल या वंश की संज्ञा जो उसके मूल पुरुष के अनुसार होती है । विवाहादि अवसरों पर गोत्रोचार द्वारा वर वधु के वंश का परिचय दिया जाता है, जिससे सगोत्र विवाह न हो सके । प्राचीन परिपाटी के अनुसार अपना परिचय देते हुये, व्यक्ति अपने गोत्र, गुरु, पिता और गाँव का उल्लेख भी करता था ।

पाणिनी ने 'अपत्यं पौत्र प्रभृति गोत्रम' कहकर गोत्र की परिभाषा दी है, जिस का सीधा अर्थ हुआ कि पौत्र से लेकर एक पुरखा की जो संतान है, उसकी गोत्र संज्ञा है । दूसरे शब्दों में एक पुरखा के वंश में पोते - पड़पोते आदि जितनी भी संतान होती जायेगी, वह एक गोत्र कहा जायेगा । मूल पुरुष के नाम से उन सबका गोत्र जाना जायेगा । इस मूल पुरुष को गोत्रकार कहा जाता है । लगता है कि वैदिककाल से ही गोत्रों का प्रचलन हो गया था । वेद के प्रत्येक मंत्र के साथ ऋषि, देवता तथा छंद का उल्लेख मिलता है । 'ऋषयो मंत्र दृष्टार', जिस ऋषि ने जिस मंत्र का साक्षात्कार किया और उसे साधन युक्त किया, वही उस मंत्र का ऋषि कहलाता है और वही ऋषि गोत्रकार भी है ।

एक ही ऋषि गोत्र के वंशज विभिन्न स्थानों या गावों में निवास करते थे, कालान्तर में वे अपने स्थान के नाम से प्रसिद्ध हो गये । उसे बोलचाल की भाषा में शासन, अवंटक, अल्ल, खाँप इत्यादि कहते हैं । पाणिनि ने इसे गोत्रावयव की अलग संज्ञा दी है । भ्रमवश तथा थोड़ी अज्ञानता के कारण इसे गोत्र समझ कर लोगों ने इसे ही प्रमुखता देना प्रारंभ कर दिया । वंश दो प्रकार का होता था एक विद्या संबंध से तो दूसरा योनि संबंध से । विद्यावंस गुरु परंपरा के रूप में चलता था ।

कहते हैं कि स्वयंभू ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों में भृगु, अंगिरा, मरीचि तथा अत्रि ये चार गोत्रकार ऋषि हैं । फिर भृगु के कुल में जमदग्नि, अंगिरा के गौत्तम व भारद्वाज; मरीचि के कश्यप, अगस्त और वशिष्ठ तथा अत्रिके विश्वामित्र और स्वयं अत्रि इस प्रकार अन्य आठ गोत्रकार ऋषि हुए । इन मूल गोत्रकार ऋषियों मे से प्रत्येक के वंश में आगे चलकर अनेक यशस्वी न स्वनाम धन्य ऋषि हुये । उनकी विशिष्ठताओं के कारण उनके नामों से स्वतंत्र गोत्र प्रचलित हो गये और इस प्रकार ऐसे गोत्रकारों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती गई । ब्राह्मणों की भिन्न २ जातियों में भिन्न २ गोत्र दृष्टिगोचर होते हैं ।

तपोनिष्ठ ब्राह्मणों के नौ गोत्र प्रवर्तक ऋषियों का परिचय इस प्रकार है :

(१) **महर्षि अत्रि** : ये स्वयंभू ब्रह्मा के मानसपुत्रों में से एक थे । इनकी प्रथम उत्पत्ति ब्रह्माजी के नेत्र से मानी जाती है । कर्दम प्रजापति की पुत्री अनसूया के साथ इनका विवाह हुआ था । इनसे दत्तात्रेय, दुर्वासा व सोम नाम के तीन पुत्र हुये ।

महादेव के श्राप के कारण ब्रह्माजी के दसों पुत्रों की मृत्यु हो जाती है । ब्रह्माजीने पुनः एक यज्ञ किया, जिसकी अग्नि शिखाओं में से इनका फिर जन्म हुआ था । इनके पुत्र-पौत्रादि में से अनेक मंत्रदृष्टा ऋषि थे । ये ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के संपादक है । 'अत्रि संहिता' इनके द्वारा प्रणीत प्रसिद्ध ग्रंथ है । ये सप्तर्षियों में एक हैं । तत्त्वज्ञान की दृष्टि से इनका प्रतीक जल तत्त्व है और वाणी शक्ति के प्रदाता है । वैसे मृत्यु से बचानेवाला अत्रि कहलाता है । अरात्रि होने के कारण अत्रि हैं । अत्रि ज्ञानी को भी कहते हैं ।

(२) **महर्षि कश्यप** : स्वयंभू ब्रह्मा के मानस पुत्रों में से एक मरीचि ऋषि के ये ज्येष्ठ पुत्र थे । कहते हैं कि दक्ष प्रजापतिने अपनी साठ कन्याओं में से तेरह का विवाह इनसे किया था । इनसे जो पुत्र उत्पन्न हुये, उन्होंने अपने २ वंश चलाये, जैसे अदिति से आदित्य, दनु से दानव व दितिसे दैत्य । इनके कुल में ये स्वयं तथा दो पुत्र वत्सर तथा असित मंत्रदृष्टा ऋषि हुये । इनकी पत्नियों से ही संसार के विभिन्न जीव उत्पन्न हुये । कश्यप की गणना प्रजापतियों में होती है । 'शतपथब्राह्मण' के अनुसार ये दक्षिणी भूमाग के राजा बने । इनकी एक पत्नी का नाम काला था । इन्होंने अपने ढंग से परशुराम को पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन करने से रोका था ।

मत्स्य पुराण में कहा गया है कि कश्यप द्वारा द्राक्षायणी के गर्भ से जगत की उत्पत्ति हुई ।

(३) **महर्षि गौत्तम** : रहुगुण पुत्र गौतम सप्तर्षियों में से एक थे तथा महासती अहिल्या के पति थे । ये ऋग्वेद प्रथम मंडल के सूत्र ७४ से ९३ तक के तथा अथर्ववेद काण्ड २० से सूझ २५ के मंत्रदृष्टा ऋषि हैं । यजुर्वेद के अनेक मंत्रों के भी ये मंत्रदृष्टा ऋषि माने जाते हैं । इनके पुत्र का नाम शतानंद था, जो राजा जनक के पुरोहित थे । दस गोत्रकारों में से ये भी एक हैं । गौतम का न्यायदर्शन विश्वप्रसिद्ध ग्रंथ है ।

(४) **महर्षि पराशर** : मैत्रावरुणि वशिष्ठ के पौत्र तथा शक्ति के पुत्र थे । स्वयं भगवान विष्णु पराशर के पुत्र रूप में द्वैपायन नाम से मत्स्य कन्या सत्यवती की कोख से उत्पन्न हुये थे । पराशर की माता का नाम अदृष्यति था । अपने पिता का बदला लेने के लिये इन्होंने राक्षस सत्र किया था, जिसे उन्होंने पितामह वशिष्ठ के कहने से बंद किया था ।

(५) **महर्षि भरद्वाज** : महर्षि अंगिरा के पौत्र तथा बृहस्पति के पुत्र शंयु के पुत्र महर्षि भरद्वाज थे । आपकी माता का नाम सत्या था तथा पत्नी का नाम नीरा था । जिससे वीर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था । ये ऋग्वेद के छठे मंडल के संपादक थे तथा यजुर्वेद के १६ मंत्रों के भी सृष्टा थे । तीर्थराज प्रयाग में इनका आश्रम प्रख्यात था, जहां श्रीराम वनगमन के समय गये थे । 'भरद्वाज संहिता' इनका अमूल्य ग्रंथ है ।

(६) **महर्षि वत्स** : आदि गोत्रकार चार ऋषियों में भृगु विख्यात हैं । इन्हीं के वंश में वत्स हुये, जो ऋग्वेद दसम मंडल सूक्त १८० तथा यजुर्वेद और अथर्ववेद के क्रमशः २१ तथा ४० मंत्रों के मंत्रदृष्टा थे । ये भी गोत्र प्रवर्तक ऋषि हैं ।

(७) **महर्षि वशिष्ट** : मैत्रावरुणि और उर्वसी से उत्पन्न ऋषि, जो ऋग्वेद के सातवें मंडल के संपादक थे । इन्होंने महर्षि नारद की बहिन अरुंधती से विवाह किया था । जिससे उन्हें शक्ति नामक पुत्र की प्राप्ति हुई थी । ये यजुर्वेद के पच्चीस तथा अथर्ववेद के आठ मंत्रों के भी ऋषि थे । इनके संरक्षण में ही सूर्यवंश की स्थापना हुई थी । इन्होंने 'वशिष्ठ पुराण' तथा 'वशिष्ठ स्मृति' और 'योग वाशिष्य' जैसे उल्लेखनीय ग्रंथों की रचना की थी । ये रामचंद्र के गुरु व व्यासदेव के प्रपितामह थे । कालिदास ने रघुवंश में इन्हें कुलपति कहा है ।

(८) **महर्षि हरितस (हारीत)** : आंगिरस कुलोत्पन्न एक ऋषि, जो केवलांगिरस वंश मालिका के छः भेदों में से प्रमुख है । ये गोत्रकार थे ।

(९) **महर्षि कुशिक (कौशिक)** : विश्वामित्र के ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के पश्चात उनके, कुल में उत्पन्न एक ऋषि । इनके हेमवती नामक पत्नी थी । ये एक ब्रह्मर्षि मंत्रदृष्टा ऋषि के साथ गोत्र प्रवर्तक भी थे ।

धर्मश्रीजी के काल के थोड़े पूर्वतक तो गोत्र व्यवस्था व्यवस्थित रूप से चली पर उसके बाद समाज में अशिक्षा के कारण अनेक कुरीतियाँ प्रवेश कर गईं । धर्मश्रीजीने स्व खर्चे से समाज का एक सम्मेलन बुलाकर उन कुप्रथाओं को दूर करने का प्रयत्न किया । साथ ही उन्होंने यह भी अनुभव किया कि मात्र नौ गोत्रों के कारण वैवाहिक कार्यो में कठिनाइयाँ आरही हैं । अतएव इसी सम्मेलन में सबकी सम्मति तथा सुगमता की दृष्टि ते उपयुर्क्त नौ गोत्रों को ८४ खांपों (अल्ल या अवटंक) में विभाजित कर दिया । यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि ८४ की संख्या पूर्णता की तथा उच्चता को द्योतक लगती है (तभी तो योनियों की संख्या चौरासी लाख, आसन ८४, आदि) । यही कारण है कि श्रीमाली ब्राह्मणों, अग्रवालों और माहेश्वरियों में भी ८४ अवटंक हैं) ।

परिशिष्ट-२

हमारे प्रेरणा स्तम्भ

समाज की दिवंगत विभूतियों के जीवन वृत्त

जीवन चरित्र सम्बन्धी कथ्य

'मनुष्य के अध्ययन का सबसे उपयुक्त विषय मनुष्य है ।' (The proper study of man is man) – अंग्रेजी कवि पॉप । इस न्याय से किसी जाति के अध्ययन के लिये इसके प्रमुख प्रमुख मनुष्यों के जीवन के अध्ययन की नितांत आवश्यकता है, जो उस जाति को अपने सुकार्यों व बलिदानों से एक मोड़ देकर उसे नया स्वरूप प्रदान करते हैं ।

जाति के इतिहास लेखन का कार्य करते समय यह वस्तु और भी उभर कर आई । पचास–साठ पत्र दिवगंत विभूतियों की संतानों व परिचितों को प्रेषित किये गये, पर मात्र चार–पांच व्यक्तियों को छोड़कर शेष ने मौन रहना ही अच्छा समझा । उन्हें स्मृति पत्र भी दिये गये । तीन–चार सज्जनों के उत्तर और मिले, पर शेष से उत्तर लाने में नाकामयाब रहे । तब समाज के मुख–पत्र 'स्वर्णप्रभा' में अनेक बिन्दुओं पर जीवन–चरित्र तैयार कर भेजने के लिये एक विज्ञप्ति भी प्रकाशित करवाई गई, पर यह प्रयत्न भी निष्फल रहा । अतएव जितनी सामग्री हमारे पास उपलब्ध थी, जितना हम एकत्रित कर सके तथा जितना हमें व्यक्तिगत परिचय था, उसके आधार पर यहां जाति के आधार–स्तम्भों के जीवन दिये गये हैं ।

इन जीवनचरित्रों के व्यक्ति अनेक स्थलों के हैं, अनेक धन्धों के हैं तथा अनेक वृत्तियों के हैं । इसमें संप्रदाय–प्रवर्तक महात्मा हैं, महामण्डलेश्वर हैं, भक्त हैं, साहित्यकार हैं, डाक्टर हैं, वकील हैं और धंधेदारी हैं । इन सभी विभूतियों ने अपनी अन्तःशक्ति से अपने अपने क्षेत्रों में अपने गुणों की अमिट छाप छोड़ी है । ये सभी हमारे प्रेरणा–स्रोत हैं । यहां कुछ ही विभूतियों के जीवन को अंकित करने का विनम्र प्रयास है । जबकि अनेक महापुरुषों (महात्मा परमहंसजी, पं. श्री रामसुखजी साकरिया, श्री रामजी मांडवीवाला, श्री संदुरलाल जी खटोर (जोधपुर) भक्त धीरोजी, संत मंशारामजी (मजल) श्री प्रतापचंद जी बूचा, भक्त धन्नोजी, भक्त तिलोकजी, भक्त समसोजी, रामभक्त रामप्रतापजी (जयपुर) पं. तुलसीरामजी (छापर), श्री सुखलालजी काला (हाथरस) के जीवन लिखने में अपेक्षित सूचनाओं का अभाव अखरता है, फिर भी हमारे प्रयत्न जारी हैं ।

इस ग्रन्थ में अंकित विभूतियों के चरित्रों का एक प्रारंम्भिक रूप ही समाज के

सम्मुख उपस्थित किया जा सका है विश्वास है कि अनेक बंधु इस महत्त्वपूर्ण कार्य को हाथ में लेकर इसे पूर्ण करने का प्रयत्न करेंगे ।

समाजरत्न श्री हेमराजजी (सिरोही), श्री जेठानन्दजी बाइमेरा (अजमेर), स्व. श्री बंशीधरजी (व्यावर), स्व. जयनारायणजी साकरिया (जोधपुर) स्व. प्रो. रामस्वरूपजी काला (लाडणू) श्री रमेशचन्द्रजी कट्टा (अजमेर) श्रीगोरधनदासजी कट्टा (अहमदाबाद) श्री प्रह्लादरायजी (कानपुर), श्री ओमप्रकाश साकरिया (जोधपुर) श्री मोतीलालजी शर्मा (कलकत्ता) तथा श्री भवानी शंकरजी (अहमदाबाद) के हम हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने जीवन विषयक सामग्री प्रेषित कर हमें आभारी किया है ।

अजमेर

(१) वैद्यभूषण पं. कल्याणमलजी शर्मा :

आपका जन्म भूतपूर्व किशनगढ़ राज्य के अन्तर्गत सरवाइ गांव में वि. सं. १९५० में हुआ था । आपके पिताजी पं. गणेशरामजी सरवाइ के विशिष्ट चिकित्सक थे । बचपन में ही माता पिता और बड़े भाई पं. जगन्नाथजी के देहावसान के कारण आप पर विपत्तियों के पहाड़ टूट पड़े । विषम परिस्थितियों से हताश न हो, आप अथक परिश्रमी और विद्याप्रेमी बन गये । मात्र सोलह वर्ष की अवस्था में आप सरवाइ छोड़कर अजमेर आ गये और यहीं आपका विवाह डीडवाणा निवासी श्री जयदेवजी की पुत्री सूरजबाई से हुआ । परिवार का दायित्व संभालते हुए भी आप निरन्तर अध्ययनरत रहे । संस्कृत का अध्ययन कर आयुर्वेद का गहरा अभ्यास किया । परिणामस्वरूप वैद्यभूषण आदि कई उपाधियां प्राप्त कीं । अपनी श्रेष्ठ चिकित्सा तथा उत्तम व्यवहार के कारण अत्यन्त अल्प समय में ही अजमेर के प्रतिष्ठित वैद्यों में उनकी गणना होने लगी । २६ वर्ष की अल्पायु में ही पत्नी का देहान्त हो गया । इससे थोडी विरक्ति सी आई । अब आपका ध्यान भगवद्भक्ति व योगाभ्यास में अधिक जमने लगा । दूसरी और चिकित्सा के क्षेत्र में आपको अधिकाधिक कीर्ति, प्राप्त होती रही । अनेक असाध्य रोगों को आप विशिष्ठ योग क्रियाओं द्वारा मिटा देते थे । आप अत्यन्त सज्जन व निस्पृह व्यक्ति थे । समाज सेवा के क्षेत्र में भी आपने महत्वपूर्ण योगदान देना आरम्भ किया । आपके ही के संस्कारों के फलस्वरूप आपके भाई के पुत्र श्री राजनारायणजी एक अच्छे वैद्य बने ।

आपके व्यक्तित्व तथा सेवा कार्यों से प्रभावित हो, समाज ने भी आपको जोधपुर महासभा के सभापति बनाकर सम्मानित किया । सन् १९३१ में आपका निधन हो गया ।

(२) श्री भोपतरामजी (भूपतिरामजी) भारद्वाज (कट्टा)

रत्नों के पारखी होने के साथ साथ मनुष्यों के भी आप उत्तम पारखी थे । स्वभाव से स्वाभिमानी व दृढ़ तथा सुन्दर व्यक्तित्व के धनी श्री भोपतरामजी अजमेर के तत्कालीन समाज के अग्रगण्य नगरजनों में से एक थे । इतिहासविद् महामहोपाध्याय श्री गौरीशंकर हीरानन्द ओझा, पं. धरणीधरजी शास्त्री नगर सेठ श्री सोनीजी तथा उस समय के अंग्रेज कमिश्नर सभी उनके मित्रों में से थे ।

हाथरस की प्रथम महासभा के सफल आयोजक पं. मुरलीधरजी साकरिया आपके सम्बन्धी थे । आपही के सुझाव पर पं. मुरलीधरजी ने प्रथम महासभा करने का तय किया था ।

एक बार मर्दुमशुमारी में उनके मोहल्ले के ही एक कर्मचारी ने जाति विषयक खाने में उनकी जाति, (धंधे की दृष्टि से) बिना पूछे ही लिख दी । इस पर थोड़ी उग्रता आ गई । कर्मचारी की उद्धतता व ढीटता को वे सहन न कर सके । अपना

ही बद्या समझ कर उन्होंने उसे एक तमाचा जड़ दिया । बात का बतंगड़ बन गया । कर्मचारी ने शिकायत कर दी । परिणामस्वरूप केस चला । अंग्रेज कमिश्नर ने अजमेर के सात विभिन्न ब्राह्मणों की एक कमेटी बिठलाई, जिसमें महामहोपाध्याय श्री ओझाजी तथा पं. धरणीधरजी भी थे । सभीने एक मत से निर्णय दिया कि श्री भोपतरामजी ब्राह्मण ही हैं ।

इनकी एकमात्र संतान श्री सोमदत्त थे, जिन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में प्रथम वर्ग में एम. ए. की डिग्री प्राप्त की थी । जब वे संस्कृत में धाराप्रवाहित भाषण करते तो श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो जाते थे । पर इसे हमारे समाज का दुर्दिन ही कहना चाहिये कि उनका देहान्त बहुत जल्दी ही हो गया और एक होनहार सितारा अस्त हो गया । श्री भोपतरामजी अजमेर सभा के अध्यक्ष थे तथा हाथरस, ब्यावर, बीकानेर की महासभाओं में आपने अजमेर का प्रतिनिधित्व किया था । सन् १९४४ में श्री भोपतरामजी का देहावसान हो गया ।

(३) श्री टीकमदासजी बाड़मेरा :

श्री टीकमदासजी का जन्म सिंध हैदराबाद में मेघराजजी के यहाँ वि. सं. १९६४ में हुआ था । घर के धंधे के कारण विद्याध्ययन अधिक नहीं हो सका । मात्र छट्ठी कक्षा पास कर काम चलाउ सिंधी (अरबी लिपि) का ज्ञान प्राप्त किया था । हैदराबाद में ही आपका विवाह श्री गणेशदासजी कट्टा की पुत्री लक्ष्मीबाई के साथ हुआ था जो साक्षात लक्ष्मी ही थी ।

आपको आधुनिक श्रवणकुमार कहा जा सकता है । गठिया रोग से पीड़ित अपने पू. पिताजी को तीर्थ यात्रा करवाई । कहीं सवारी न मिलने पर उनको पीठ पर बिठलाकर भी गये । आपके घर में धार्मिक पुस्तकों की छोटी सी लाईब्रेरी बन गई थी जिसका उपयोग मोहल्ले के सभी लोग किया करते थे ।

एक बार "झड़ौला" के लिए वे अपने पूर्वजों के गांव जैसलमेर गये तो वहाँ के महारावल जवाहरसिंह से मिलने भी गये । उन्होंने अपनी उत्तम कला के रूप में कमल के आकार की लोंग की सुन्दर जोड़ी बना कर दी । महारावल खुश हो गये और उन्हे सिरोपाव भेट किया ।

समाज सुधार तथा विद्याप्रसार की दृष्टि से आपने घर घर पेटिकायें रखाईं । इस प्रकार एकत्रित धन से माताजी के न्याति मन्दिर में रात्रि पाठशाला चलाई, जिसमें हिन्दी की कोविद, रत्न आदि की पाठ्य पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं । प्रोत्साहन में बद्यों को पुरष्कार देते थे । वहाँ समाज में फैली अनेक कुरीतियों की दूर करने का श्रेय आपको है ।

पाकिस्तान बनने के पश्चात् आप अजमेर में ही स्थायी रूप से बस गये । अतिथि प्रेमी श्री टीकमदासजी का (सं. २०२८ में फाल्गुनवदी ४) निधन हो गया ।

(४) श्री तुलसीरामजी शर्मा :

आपका जन्म ६ अक्टूबर १९१३ में अजमेर में श्री नृसिंहदासजी कट्टा के यहाँ हुआ था, जो उस समय नगर के जाने माने सेठों में थे । आपके पिताजी का नाम

श्री मोडीरामजी था, जो भोपतरामजी के छोटे भाई थे । श्री मोडीरामजी के देहान्त के पश्चात् अपने ताऊजी श्री भोपतरामजी के मार्गदर्शन में एक और पैतृक धंधा भी सीख रहे थे तो दूसरी और विद्याभ्यास भी कर रहे थे । मैट्रिक उन्होने प्रथम श्रेणी में पास की तथा गणित, हिन्दी व संस्कृत में विशेष योग्यता प्राप्त की । संस्कृत की इस योग्यता के कारण उन्हें रजत पदक भी मिला । अपने ताऊ की भांति वे भी आर्य समाज से सम्बन्धित थे तथा समाज सुधार में लगे थे । अजमेर समाज के आप प्राण थे । अजमेर सभा के आप मन्त्री रहे और वही से ''स्वर्ण प्रभाकर'' नामक हस्तलिखित पत्रिका निकाला करते थे, जिसके सम्पादक श्री यज्ञदत्त थे । आपके ओजस्वी कार्यकाल में भाटाबाव, इन्दरकोट अजमेर में श्री सत्यनारायण भगवान की मूर्ति स्थापित की गई, गंज में न्याति सम्पत्ति पर ७ दुकानें, ४ कमरे, बरामदा तथा अेक दरवाजा उनके नेतृत्व में बनवाये गये । तथा बगीची में माताजी के मन्दिर का जीर्णोद्धार किया गया ।

स्वर्ण नियन्त्रण धारा के विरोध में आपके द्वारा की गई अविस्मृत सेवाओं के फलस्वरूप, आप अखिल राजस्थान स्वर्णकार संघ के उपाध्यक्ष चुने गये । ऐसे कर्मठ कार्यकर्ता का देहावासन दिनांक १३ फरवरी, १९८३ की अजमेर में ही हो गया ।

श्रीकांत शर्मा

आपका जन्म 'अक्टूबर १९२९ को अजमेर में श्री छगनलालजी के घर हुआ था । जो पोस्ट एंड टेलिग्राफ विभाग में सेवा रत थे । पिताजी की बदली पूणे (महाराष्ट्र) में हो गई, अतएव आपकी शिक्षा महाराष्ट्र में ही सम्पन्न हुई । तत्कालीन मुंबई राज्य में पुलिस विभाग में सब इंसपेक्टर के रूप में अपनी नियुक्ति के पश्चात् ईमानदारी एवं साहस के साथ कार्य शुरु किया । इसी आधार पर तथा अपनी कार्य दक्षता के कारण उनकी पदोन्नति होती गई और अंत में सेवा निवृत्ति के समय वे जिला पुलिस अधीक्षक के रूप में कार्यरत थे । सुरत में एण्टी करपशन विभाग में काम करते हुए उन्होंने ७५ लाख रुपये का तस्करी माल पकड़ा । इस और ऐसे अनेक प्रशंसनीय कार्यों के फल स्वरूप, सरकारने आपको राष्ट्रपति का पुलिस मेडल अर्पण किया । सारे समाज के लिये गौरवमयी घटना थी ।

लंबे, तगड़े और गौर वर्ण का उनका व्यक्तित्व भव्य था । सन् १९९१ में हृदयाघात के कारण आपका निधन हो गया । वे अपने पीछे पतिपरायणा पत्नी मधुरिकाबेन, दो सुयोग्य पुत्रियाँ और तीन पुत्र छोड़ गये ।

वेदांत केसरी स्वामी ईश्वरानंदजी

विविध शास्त्रों के ज्ञाता स्वामीजी आजन्म वेद प्रचारक रहे । उन्होंने दो अेक स्थानों पर वेद–सम्मेलन बुलवाये, जिनमें भारत भर के वेद ज्ञाताओं के साथ शंकराचार्य भी आते थे । वे निस्पृह और तेजस्वी थे । उनका निधान अजमेर में उनके ही 'वेद–आश्रम' में चार वर्ष पूर्व हो गया ।

उदयपुर

श्री मनजी मायारामजी साकरिया

सत्रहवीं शताब्दी की एक अभूतपूर्व घटना हमारे समाज के लिए एक ओर गौरवमयी थी तो दूसरी ओर वह ऐसी शापित साबित हुई कि जिसने भूतपूर्व मारवाड़ राज्य का दक्षिणी–पश्चिमी भाग (बाली, पाली, सोजत, सांचोर, भीनमाल, जालोर, सिवाना, मालानी, पंचपद्रा आदि परगने) समस्त मेवाड़ राज्य व सिरोही राज्य के हमारा समाज को बरबादी के कगार पर पहुंच दिया था ।

मेवाड़ राज्य से सम्मानित श्री मनजी मयारामजी ज्योतिषी होने के साथ साथ एक कुशल कारीगर थे । अपनी कलाकारी व ईमानदारी आदि गुणों के कारण वे महाराण के बड़े प्रिय थे । इन्ही गुणों के कारण महाराणा ने इन्हें हाथी सिरोपाव प्रदान किया था । हाथी सिरोपाव में हाथी की सवारी के अतिरिक्त पहिनने का जामा, पैरों में सोना आदि कई सम्मानजनक वस्तुएँ हुआ करती थीं ।

श्री मनजी को सगाई श्री भगाजी तथा श्री जैयपजी की बहिन कस्तुबाई के साथ हुई थी । उनके विवाह के समय, जब वे हाथी पर बैठ कर पूरे सरकारी लवाजमे के साथ बाजार से गाजे बाजे के साथ निकले तो दीवान व धनिक वणिक वर्ग द्वेषाग्नि से जल उठा । इन सभी ने अपनी द्वेषाग्नि में मनजी को भस्म करने के लिए षड़यन्त्र रचा और उदयपुर से बड़ी सादड़ी तक के रास्ते में अपने जाति बंधुओं को कहला दिया कि तोरण वांदने के पूर्व जहाँ मौका मिले दूल्हे की हत्या कर दी जाय । षड़यन्त्रकारी रास्ते में तो कहीं सफल न हो सके पर वधु के घर के आगे जब वे तोरण वांदने पहुंचे तो किसी ने उनकी हत्या करदी । तब से द्वेषी समाज ने व्यंग्य में यह कहना शुरू कर दिया कि अब तो यह समाज घोड़े पर न बैठ कर हाथी पर ही तोरण वांदेगा । अपने घृणित उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने गांव गांव में अपने समाज के लोगों में यह संदेश भेज दिया कि इनके दूल्हे को घोड़े पर न बैठने दिया जाय । इस बहुसंख्यक, धनिक व बहु वर्चस्व वाले शक्तिशाली वर्ग के साथ स्वार्थहित जागीरदार भी जुड़ गये जिसके कारण अनेक दूल्हे–दुल्हिनों को मोटी ऊमर में विवाह करना पड़ा तथा अनेकों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा । घोड़े के इस झगड़े ने सारी जाति को हर दृष्टि से बरबाद कर दिया ।

सादड़ी में श्री छगनजी वनजी के मकान के आगे कुछ वर्षों पूर्व तक एक तत्संबंधी शिलालेख था । डॉ. शंकरलालजी महेचा के पत्रानुसार उसे वहाँ से हटा कर बगीची में रखा गया और जब बगीची में कुंआ खोदा जाने लगा तो हमारी अज्ञनतावश वह मिट्टी के अंबार में दब गया ।

हमारे भाट सर्वश्री शंकरलालजी, मानजी, गिरधारीजी तथा केहरिंगजी ने भी अपने जीर्ण वहियों से इस घटना की साक्षी दी है । दुख है कि आचार्यजी के अविरत प्रयत्नों के बावजूद आज तक उपर्युक्त शिलालेख का पता नहीं चल पाया है ।

टिप्पणी :

भाट लोग पढ़े लिखे नही होते थे, अतएव अक्षर और मात्रा में अनजाने ही अक्सर भूल हो जाया करती थी । एक वही में हमारे ही परिवार के श्री केसूरामजी के स्थान पर ''कसर'' लिख दिया और अन्त में कई वर्षों के पश्चात् वह ''कसर'' केसर बाई पढ़ा गया । इसी प्रकार मनजी मयारामजी के नाम में भी अंतर हो सकता है । यह नाम डो. गोविदरामजी ने बतलाया था । हो सकता है कि केसरबाई की भांति, यह भी मानाजी मुनीलालजी, मनोहरजी आदि हो सकता है । घटना ऐतिहासिक है, पर नायक के सही नाम की अब भी अपेक्षा है ।

डा. गोविन्दरामजी के छोटे भाई वयोवृद्ध अमृतलालजी ने भी शिला लेख का होना स्वीकार किया है और अभी मार्च, १९८७ में अहमदाबाद के अधिवेशन में सादड़ी से पधारे सर्व श्री दुर्गेशजी तथा छगनलालजी ने इतिहास समिति के अध्यक्ष व महासभा के अध्यक्ष (क्रमशः आचार्य बदरीप्रसादजी साकरिया व श्री मधुशेखरजी) के सम्मुख शिलालेख के अस्तित्व को स्वीकार किया था और उसकी प्रतिलिपि करवा कर भेजने को भी कहा था ।

जसोल

वकील श्री प्रतापचन्दजी :

आप जसोल निवासी श्री पूनमचन्दजी महेचा के छः पुत्रों में से सबसे बड़े पुत्र थे । उन दिनों लिखने पढ़ने की सुविधा नहींवत् थी । पर गांव के स्कूल में ही पढ़कर इस प्रतिभाशाली ने अपने बलबूते से वकालात की । आप केवल फौजदारी के केस लड़ा करते थे और बड़े बड़े हाकिम तक उनकी धाक मानते थे ।

आपका ननिहाल पचपद्रा में था तथा आपके एक पुत्र तथा एक पुत्री थी । पुत्र श्री मूलचन्दजी वकील थे तथा पुत्री पाली में श्री विजयरामजी को ब्याही थी ।

जाति सुधार को लक्ष्य में रखकर आपने श्री नारायणदासजी बैरिस्टर के साथ सन् १९०८ में एक अपील प्रकाशित करवाई थी । मारवाड़ राज्य में प्रजातन्त्र स्थापनार्थ आपने सक्रिय कार्य किया, जिसके परिणामस्वरूप आपको देश निकाल हुआ । (ललकार साप्ताहिक से उद्धृत) जोधपुर नगर में आप प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होने पश्चिमी ढंग का एक सुन्दर बंगला बनवाया । जोधपुर में कचहरी रोड पर स्थित यह बंगला आपका भव्य स्मारक है ।

श्री मधुशेखरजी महेचा

आपका जन्म राजस्थान के बाड़मेर जिले के जसोल गाँव में, पिता श्री जगचंदजी के यहां २४ नवम्बर १९३२ को हुआ था । जोधपुर में बीएस.सी. और B.E. (सिविल) की परीक्षाएँ पास कर, एक इंजीनियर के रूप में राजस्थान सरकार की सेवा में लग गए । इन्होंने अनेक स्थानों और अनेक पदों पर काम करते हुए अंत में सुपरिनटेडिंग

इंजीनियर के पद से अवकाश ग्रहण किया । अपनी कार्यकुशलता, नियमितता व मृदुस्वभाव के कारण, उन्होंने सहकर्मियों और अधिकारियों का मन जीत लिया था और सबके सम्मान के पात्र बने ।

वे सात साल तक समाज की सर्वोच्च सभा के अध्यक्ष रहे । इस दरम्यान समाज की बेहतर सेवा के लिये 'सर्व हितकारी ट्रस्ट' की स्थापना की जो आज अधिक सुचारू रूप से कार्य कर रहा है । एक बुक बैंक भी आरंभ किया । इतिहास निर्माण के महत्त्वपूर्ण कार्य को किन्हीं अदृश्य कारणों के कारण पूरा नहीं करवा सके, परंतु इतना तो कहना ही होगा कि आज समाज में जो थोड़ी–बहुत चेतना की लहर दिखाई देरही है, उसमें उनका योग्यदान था ।

ऐसे कार्यदक्ष व्यक्ति का २५ अक्टूबर १९९७ को निधन हो गया ।

जैसलमेर

वीरवर लोहटजी :

आपका जन्म जैसलमैर जिले के अन्तर्गत लुदरवा गांव में श्री वीरमजी के घर में हुआ था । आप अपने पिता की इकलौती संतान थे, पर बड़े होनहार थे । उनका विवाह हुए अभी कुछ ही समय बीता था कि देश पर शत्रुओं का प्रबल आक्रमण हुआ ऐसे समय एक वीर कैसे शांत बैठ सकता था ? उन्होंने जिरह बख्तर धारण किया और युद्धभूमि में जाने के लिए पिताजी की आज्ञा लेने पहुंचे । वीर वेष में सज्ज अपने एक मात्र पुत्र को देख, पिता का हृदय, द्रवित हो गया । एक ओर देश की शान तो दूसरी ओर इकलौती संतान, पिताजी की किंकत्तर्व्य–विमूढ़ अवस्था को देख लोहटजी ने पिता को ढाढंस बंधवाया और मातृभूमि के ऋण से उऋण होने को वह योद्धा साथियों के साथ चल पड़ा कि ममतामयी माँ की याद आई । माँ को प्रणाम कर जैसे ही कक्ष से निकले कि सामने आरती सजाये पत्नी खड़ी थी । आरती उतार कर भीगी पलकों से उसने पति को मुस्कराते विदा दी ।

युद्धभूमि में लोहटजी ने अपने नाम को सार्थक किया । उनसे लोहा लेने में शत्रु असमर्थ थे । वे जिधर जाते, शत्रु सेना में कुहराम मच जाता । उनकी सिरोही रुकने का नाम नहीं लेती थी । शत्रु विकल थे । उन्होंने एक बड़े समूह में लोहटजी पर आक्रमण किया। क्षतविक्षत लोहटजी बराबर जूझते रहे । सिरच्छेद हो जाने के पश्चात् भी वे अंतिम पल तक लड़ते रहे । आखिर वैशाख वदि ३, संवत १०५९ को यह सिंह सदैव के लिए सो गया । लुदरवा के अनेक जैन मन्दिरों के पास बनी उनकी देवली हमें आज भी आमन्त्रण देती है कि जाति व राष्ट्र के लिये उच्चतम त्याग कर कीर्ति प्राप्त करें । जैसलमैर समाज का यह कर्तव्य होता है कि वीरवर लोहटजी की पुण्यतिथि पर सपरिवार पुष्पांजलि अर्पित कर उनसे प्रेरणा लें ।

जोधपुर

(१) **श्री नारायणदासजी वैरिस्टर :**

आज से १०२ वर्ष पूर्व जब सारा देश शिक्षा में पिछड़ा हुआ था तो मारवाड़ राज्य का तो कहना हो क्या ? और उसमें भी हमारे समाज की अवदशा का वर्णन भी नहीं हो सकता ? ऐसी विपरीत परिस्थितियों में समाज के एक नवयुवक का विलायत से बैरिस्टरी पास करके लौटना हैरत अंगेज ही माना जायेगा ?

आपके पिताजी का नाम श्री चौथमलजी था । तीन भाइयों में (श्री जगन्नाथजी और बदरीदासजी -- दोनो बड़े) सबसे छोटे श्री नारायणदासजी अपनी प्रतिभा के बल पर तथा अग्रज बदरीदासजी व जोधपुर के रिजेण्ट सर प्रताप के घनिष्ठ संबंधों के कारण बैरिस्टर बन सके । विलायत से लौटते समय वे यूरोप के अनेक देशों और अमेरिका, कनाडा, जापान आदि प्रगतिशील मुल्कों की यात्रा कर आये ।

जोधपुर लौटने पर उनकी इच्छानुसार सर प्रताप ने उनको पाली का हाकिम बनाया । वे समाज के पहिले हाकिम थे । हाकिमी करते समय प्रशासकीय कार्य तो आपने अति कुशलता से किये, जिससे उनकी सर्वत्र प्रशंसा हुई । परन्तु इसके साथ साथ समाज हित आपने कभी ओझल नही होने दिया । परिणामस्वरूप वर्चस्व वाले धनाढ़य् वर्ग से उनकी न बनी और उन्हें हाकिमी छोड़नी पड़ी ।

सर प्रताप उनकी कार्य कुशलता के कायल थे । अतएव उनको अपने राज्य ईडर ले गये, जहाँ सात वर्ष तक वे सेशन व डिस्ट्रिक्ट जज रहे । गौरवर्ण तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी बैरिस्टर साहब बहुत ईमानदार, निर्भीक व स्पष्टवक्ता थे । जीवन में भाग्य जैसी भी कोई वस्तु होगी नहीं तो इन गुणों से युक्त पुरूष किसी हाईकोर्ट के चीफ जज बनते ।

वे अपने वचन के पक्के व मातृभक्त थे । किसी से यह बात सुनकर कि लंदन में तो मांसादि खाना पड़ता है, उनकी माता ने उनको लंदन जाने से मना कर दिया । श्री नारायणदासजी ने तब यह प्रतिज्ञा की कि वे इनका स्पर्श तक न करेंगे, तब कहीं माता से आज्ञा मिली । जब ये समाचार सर प्रताप को मिले तो वे प्रसन्न हुये पर लंदन में शरीर को गरम रखने की आवश्यकता को समझ, उन्हें खानेके, लिये कस्तूरी की गोलियां साथ में दीं । श्री नारायणदासजी और उनके सहयोगी पं. बदरीप्रसाद जी साकरिया में प्रगाढ़ मित्रता थी और इन दोनों के अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप महासभा की नींव रक्खी गई । ब्यावर महासभा में आपने चार व्याख्यान दिये तथा उनकी सभा संचालन की पटुता ने उपस्थित समुदाय पर भारी प्रभाव छोड़ा । बीकानेर के चौथी महासभा के आप अध्यक्ष थे तथा हाथरस में चौथे दिन के भी आप अध्यक्ष बनाये गये थे ।

आप ही के प्रयत्नों के फलस्वरूप स्वर्णकारों पर जो "खरड़ा" टेक्स लगाया जाता था, वह बन्द करवाया गया । दो तीन सदियों से चले आ रहे घोड़े के झगडे से उत्पन्न विकट परिस्थितियों को दूर करने का आपने जोरदार प्रयत्न किया । तत्सम्बन्धी

केसों की कोर्ट में पैरवी की । समाज सुधार व संगठन के लिये आपने श्री प्रतापचंद जी (जैसोल) के साथ एक अपील सन् १९०८ में प्रसारित को थी । आपकी समाज के प्रति अनन्य निष्ठा थी ।

(२) **डो. गोविन्दरामजी हैडाऊ :**

समाज के प्रथम डोक्टर श्री गोविन्दरामजी का जन्म सादड़ी में श्री अनोपचंदजी के यहां २८ अक्टूबर, १८९५ को माता श्रीमती मणिबाई की कोख से हुआ था । श्री अनोपचंदजी की आठ संतानों में गोविन्दरामजी सबसे बड़े थे । ये मितभाषी व मिष्टभाषी दोनों थे । पिता ने पुत्र की योग्यता को भांप कर उन्हें शिक्षा के लिये जोधपुर भेजा, उसके बाद अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुये भी आपने इंदौर से एल.एम.पी.की उपाधि प्राप्त की ।

वहां से लौटने पर आपकी नियुक्ति राजकीय चिकित्सा विभाग के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्रों के लिये हुई । इसमें प्रतिमास एक निश्चित कार्यक्रम होता था, और जो मिले, उसी वाहन पर गांव गांव में जाना पड़ता था । दस वर्षों की ऐसी कष्टमयी सेवा के उपरान्त आपकी नियुक्ति जोधपुर के महिलाबाग चिकित्सालय में हुई । यहीं से ''जीवाणु विज्ञान'' में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आप कलकत्ता भेजे गये और वहाँ से लौटने पर चिकित्सकीय अनुसंधान व प्रयोगशाला को सुव्यवस्थित कर अपनी कुशलता व विश्वसनीयता का परिचय दिया ।

इसके बाद आपकी नियुक्ति वर्तमान महात्मागांधी अस्पताल में हुई । वहाँ आपके सद्व्यवहार, सेवा और लगन की सुवास सर्वत्र फैली । यही कारण था कि मारवाड़ राज्य के चुनंदे जागीरदार, राज परिवार के सदस्य, व्यापारीगण तथा साधारण जन बड़ी मात्रा में इनके यहाँ चिकित्सार्थ आने लगे । चौंतीस वर्षो की सुदीर्घ सरकारी सेवा के पश्चात् आप निवृत हो कर अपने निवास स्थान पर ही दीन दुखियों की अति कम फीस पर सेवा करने लगे । तत्कालीन महाराजा हनुवंतसिंहजी जब सरदारसमंद में बीमार थे तो डा. गोविन्दरामजी नित्य शाम को वहाँ जाया, करते थे । उनके लिए विशेष मोटर तैनात थी ।

समाज की पिछड़ी दशा से आप पूर्ण परिचित थे और मानते थे कि विना शिक्षा के उद्धार नहीं हो सकता है । इसी पूत भावना से प्रेरित होकर आपने सन् १९२८–२९ में ब्राह्मणों स्वर्णकारों के मोहल्ले में शिक्षा प्रसार हेतु रात्रि पाठशाला प्रारम्भ की । अपने अनुज श्री अमृतलालजी को वहाँ पढ़ाने के कार्य सोंपा गया और घाटी पर एक नई पाठशाला खेल कर स्वयं पढ़ाने लगे । ब्राह्मण स्वर्णकार महासभा के जोधपुर अधिवेशन के स्वागत समिति के आप कोषाध्यक्ष चयनित हुए थे तथा महासभा द्वारा उद्घाटित, प्राईमरी स्कूल के संचालन के लिए जिन दो व्यक्तियों को नियुक्त किया गया था, उनमें एक तो डा. साहव स्वयं थे और दूसरे थे पं. वदरीप्रसादजी साकरिया । जौहरी हरिरामजी बाड़मेरा (घाटोपर) द्वारा पचास रूपये मासिक तक की आर्थिक सहायता से डा. साहव स्कूल का संचालन व निरीक्षण करते थे ।

आपही ने सर्वप्रथम यह सूचना दी थी कि सादड़ी में एक शिलालेख हैं, जिसमें हाथी पर सवार होकर तोरण वांदन आये दूल्हे की हत्या की गई थी । इसकी तलाश करने के लिए आचार्य जी ने बीसों प्रयत्न किये, पर समाज की गफलत से उसका पता अब तक नहीं चल रहा है । स्वर्णप्रभा के एक लेख में श्री चतुर्भजजी जिज्ञासु ने इसके होने का समर्थन किया था ।

इकहत्तर वर्ष की अवस्था में मस्तिष्क में रक्त-स्राव के कारण दिनांक १८ दिसम्बर १९६६ को आपका देहावसान हो गया ।

(३) जौहरी हरिरामजी वाड़मेरा :

जोधपुर में ब्राह्मण स्वर्णकारों की घाटी पर निवासे करनेवाले श्री हरिरामजी हमारे समाज में अपने समय के धनिकों में जैसे अग्रणी थे, वैसे ही समाज सेवा और दानदाताओं में भी अग्रणी थे । रत्न-परीक्षा व मानव-परीक्षा के आप विशेषज्ञ थे । आपके और कुछ सदस्यों के विचार विमर्श और निरन्तर बैठकों के पश्चात् हाथरस की महासभा बुलाई गई थी । आपकी अमूल्य सेवाओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित के करने के लिए ब्यावर में सन् १९२४ में आयोजित महासभा के द्वितीय सम्मेलन में आप अध्यक्ष बनाये गये । जोधपुर में आयोजित तृतीय महासभा के आप स्वागताध्यक्ष थे और सच तो यह है कि जोधपुर सम्मेलन की सफलता का सारा श्रेय आपको व आचार्य बदरीप्रसादजी साकरिया को है । आचार्य जी ने चौधरियों और पंचों के झगड़े को अत्यन्त युक्तिपूर्वक समाप्त कर दोनों से सहयोग प्राप्त किया । अपनी मातृभाषा को प्यारे करने के कारण आपने स्वागत भाषण मारवाड़ी में दिया । यह भी एक अद्‌भुत घटना ही मानी जायेगी । जब जोधपुर में समाज की स्कूल खोलने व उसके निर्वाह हेतु धन का प्रश्न आया तो आपने अपनी ओर से पचास रुपये तक की मासिक रकम खर्च करने की सता डा. गोविन्दरामजी व आचार्यजी को सौंपी थी ।

आपके पिता श्री कालूरामजी भी नेक व जवाहरात का धन्धा करने वाले धनाढ्य व्यापारी थे ।

(४) डा. कु. कमलादेवी शर्मा एम.एस. :

समाज की प्रथम महिला डाक्टर कमलाजी का जन्म हेड़ाऊ अवंटक के धनाढ्य एवं विख्यात डा. गोविन्दरामजी के यहाँ सोमवार दिनांक २५ अक्टूबर, १९३७ की श्रीमती सरस्वतीदेवी को कोख से हुआ था । आपके पांच भाई व दो बहिनें थीं, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार है (१) श्री पन्नालालजी (२) डॉ. नन्दलालजी (३) श्री मनोहरलालजी (४) डॉ. मदनमोहनजी (५) डॉ. राजेन्द्रकुमारजी बहिनों के नाम है श्रीमती पानीबाई व श्रीमती विमला बाई ।

अपने पिताजी की इच्छानुसार, वे नारी सुलभ भय व संकोच को छोड़ कर डाक्टर बनने को कटिबद्ध हुईं । प्रारंभिक शिक्षा जोधपुर में समाप्त कर सवाई मानसिंह मेडिकल कोलेज में प्रवेश लिया । १९६२ में एम.बी.बी.एस. की डिग्री प्राप्त करके अपने शिक्षकों की प्रेरणा व आत्मबल से प्रशिक्षण कालमें भी अध्ययन जारी रखा और सन् १९७८

में एम. एस. की डिग्री प्राप्त की ।

महिला सर्जन के रूप में आपकी प्रथम नियुक्ति रतनगढ़ में हुई । बाद में जोधपुर के मेडिकल कॉलेज में शल्य चिकित्सा के प्राध्यापक पद पर आंपकी नियुक्ति हुई ।

अपने सौहार्दपूर्ण व्यवहार, सरल वेशभूषा व सेवाधर्म के कारण सबकी प्रिय रहीं । इसी सेवा कार्य के हेतु वे आजीवन कुमारी रहीं । अथक परिश्रम के कारण उन्हें कैंसर हो गया था । वे इलाज हेतु अपने भाई डो. राजेन्द्रके पास अमेरिका गईं । उन्हें आराम भी हुआ पर भारत आकार पुनः सख्त मेहनत के कारण बीमार पड़ीं और अंत में इस जानलेवा बीमारी के कारण शनिवार दिनांक २९ दिसम्बर, १९८४ को आपका निधन हो गया ।

(५) शहीद जयरामजी वाड़मेरा :

धर्म, देश व जाति के लिए हमारे देश में अनेकों ने हंसते अपने प्राणों को न्यौछावर किया है । जिस जोधपुर में ऋषि दयानन्द सरस्वती को विष दिया गया, उन्हीं के कट्टर अनुयायी, श्री जयरामजी को धर्मान्ध मुसलमानों के हाथों जोधपुर में ही अपने प्राण गंवाने पड़े ।

निर्भीक जयरामजी आर्यसमाज की एक बैठक में भाग लेकर मुसलमानों के मोहल्ले से अकेले गुजर रहे थे कि लहु के प्यासे अनेक मुसलमानों ने उन पर वार पे वार कर गम्भीर रूप से घायल कर दिया । पर उनकी गजब की हिम्मत थी । घायल अवस्था में गिरते पड़ते किसी प्रकार अपने घर आये और उसी दशा में वे अस्पताल पहुंचे जहां वि.सं. १९९५, ज्येष्ट शुक्ला १३, को रातके बारह बजे उनका निधन हो गया ।

श्री जयरामजी का जन्म वि.सं. १९४५ के चैत्रवदि १४ को माण्डवी (कच्छ) में श्री चिमनीरामजी के घर हुआ था । इनके तीन भाई और थे । श्री चिमनी रामजी शराफी के बहुत बड़े व्यापारी थे और चूंकि वे माण्डवी में रहते थे अतएव मांडवीवाले कहलाते थे । श्री चिमनीरामजी का पैतृक गांव बालोतरा नगर के पास वीठूजा था । श्री जयरामजी बड़े सरल स्वभाव के तथा अच्छे व्यक्तित्व के धनी थे ।

(६) श्री छगनीरामजी (छिनजी) कट्टा :

श्री छगनीरामजी कट्टा, जिन्हें प्रेम से सभी छिनजी कहा करते थे, तत्कालीन जोधपुर समाज के अति उत्साही कार्यकर्ता थे । हाथरस महासभा को मूर्त रूप देने में जो सज्जन लगे हुए थे, उनके आप उत्साही समर्थक व सहायक थे । एक निर्भीक कार्यकर्ता के रूप में भी आपकी अच्छी छाप थी । आप ब्यावर में नियत कार्यकारिणी के एक सदस्य तथा जोधपुर महासभा को सफल बनाने में आप काफी सक्रिय रहे थे । आपके पुत्र का नाम श्री दौलतरामजी था ।

डीडवाणा

प्रो. रामस्वरूपजी काला

समाज में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिसने तीन भाषाओं (संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी) मे एम.ए किया हो । प्रो. रामस्वरुपजी काला ऐसे ही विरल व्यक्तित्व थे जो तीनों विषयों में धारा प्रवाह बोल सकते थे । वे कोलेज में उपाचार्य रहे । लाडनू से प्रकाशित, ख्याति प्राप्त शोध पत्रिका 'तुलसी प्रज्ञा' के वर्षों तक संपादक रहे । वे मर्मज्ञ कवि थे । हिंदी और संस्कृत दोनों में समान अधिकार से कविता कर सकते थे । निर्मल हृदय के प्रो. काला के भगवान राम इष्ट देव थे । दो वर्ष पूर्व उनका निधन होगया ।

''फलौधी''

(१) श्री फतह वावा :

ये मथुरिया शाखा के थे तथा आजीवन ब्रह्मचारी थे । इनकी सात्विक वृत्ति और ब्रह्मचर्य का इतना तेज था कि ग्रहस्थ में रहते देव पद प्राप्त किया । ऐसी दृढ़ धारणा है कि सामाज के किसी व्यक्ति पर जब कोई कष्ट आया और उसने श्रद्धापूर्वक आपका स्मरण किया तो कष्ट टल जाता था । आज भी समाज का नवविवाहित दंपति उनके ''थान'' पर ''जात'' व ''धोक'' देने जाता है और यथाशक्ति भेंट पूजा अर्पण करता है । इनका काल एक सौ पंदह वर्ष पूर्व का है । इनका ''थान'' आज जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है । समाज को चाहिये कि उसका शीध्र ही पुनरुद्धार कराये ।

(२) श्री महामण्डलेश्वर १००८ श्री उछवलालजी :

आपके पिताजी का नाम श्री अंबालालजी मथुरिया था । दस बारह वर्ष की अवस्था में आपने घर त्याग दिया था । कहते हैं कि ऐसी अवस्था में उन्हें एक ऐसा सद्गुरु मिला, जिसने न केवल उनको पढ़ा लिखा कर शास्त्रवेता बना दिया बल्कि एक पूर्ण संत बना दिया । सन्यासी अवस्था में विचरण करते हुए एक बार वे अपने जन्मस्थान फलौधी आये और नगर के बाहर बगीची में ठहरे । नगर के अन्य ब्राह्मणों ने इनके शास्त्रीय ज्ञान की कस पर परीक्षा ली और उनकी प्रकांण्ड पंडिताई तथा विनम्रता के आगे नमस्तक हो गये । जब तक वहां ठहरे, नित्य उपदेश दिया करते थे । उनके ज्ञानामृत से लोग आश्चर्यचकित थे । एक बार मा की ममता अपने साधु बेटे को सम्मुख देख कर रुक न सकी और घर लौटने की विनती कर बैठी, पर उन्होंने यह मना कर दिया कि साधु के न तो कोई घर होता है और न कोई माता पिता । माता अवाक् रह गई । उधर जब भेंट पूजा आने लगी और आने वाले लोगों का तांता बंधा रहने लगा तो एक रात वे वहां से चुपचाप चले गये । आज वे महामण्डलेश्वर के पद को शोभायमान कर रहे हैं ।

(३) श्री शिवरतनजी बाड़मेरा :

श्री तुलसीरामजी बाड़मेरा के सुपुत्र श्री शिवरतनजी पूरे फलौधी गांव के गणमान्य व्यक्तियों में से थे । वे अपने समय के बडे जौहरियों में से थे और बम्बई में ही अपना कारोबार करते थे । यद्यपि उन्हें संस्कृत व अंग्रेजी का ज्ञान नही के बराबर था पर अपने अध्यवसाय के बल पर वैदिक धर्म व ज्ञान–विज्ञान के अच्छे ज्ञाता बन गये थे । वे फलौदी आर्यसमाज के संस्थापक अध्यक्ष थे । उनके सुधारवादी विचारों को कट्टरपंथी सहन न कर सके, उन पर लाठिप्यों से बर्बर हमला हुआ, पर वे बाल बाल बच गये – जाको राखे साईयां मार न सकिये कोई ।'' बौद्धिक व राजनैतिक चेतना के लिये उन्होंने अपनी एक दूकान वाचनालय व पुस्तकालय के लिये अर्पित कर दी । हाथरस में हुई प्रथम महासभा में आपने फलौदी का प्रतिनिधित्व किया था तथा सिंध में अपने समाज के जनगणना का कार्य भी किया था । वे विशुद्ध खादीधारी और भव्य व्यक्तित्व के धनी थे । समाज रत्न श्री हेमराजजी बाडमेरा आपके ही सुपुत्र थे । अचार्य पं. बदरीप्रसाद जी साकरिया के वे अच्छे मित्रों में से थे और अनेक स्थानों पर साथ–साथ काम किया ।

(४) श्री गोपीलालजी बाड़मेरा :

अपने पिताजी श्री शिवरतनजी की भांति आप भी एक कर्मठ समाज सेवी थे । उन्होंने फलौधी में नवयुवक मण्डल की स्थापना की थी । समाज की उन्नति के प्रत्येक कार्य में आपका अजोड़ सहयोग रहता था । ब्यावर में हुई द्वितीय महासभा में आपने फलौधी का प्रतिनिधित्व किया था । जाति भवन के निर्माण हेतु, धन्धे की चिंता किये बिना आपने घूम–घूम कर चंदा एकत्रित किया था । उनसे बड़ी आशाएं थीं, पर उन बड़भागी का क्या कहना ? श्री बदरीनाथ की तीर्थयात्रा के दौरान आपका देहावसान हो गया ।

आपकी धर्मपत्नी जोधपुर में थीं और वे अध्यापिका रह चुकी हैं ।

फिरोजाबाद

पं. श्री हीरालालजी साकरिया

संस्कृत की शास्त्री परीक्षा पास पं. हीरालालजी प्रसिद्ध आर्यसमाजी थे । अपने निर्मल चरित्र, प्रबन्ध–पटुता तथा ज्ञान के कारण वे पं. मुरलीधरजी साकरिया के अत्यन्त विश्वासपात्र थे । इन्हीं गुणों के कारण पं. मुरलीधरजी ने इन्हें आमंत्रित किया तथा कन्या गुरुकुल, हाथरस का संचालक – व्यवस्थापक बनाया । इस गुरुकुल में वे संस्कृत विभाग के अध्यक्ष भी थे तथा आपकी विदुषी पत्नी वहीं अध्यापिका होने के साथ साथ हर काम में पति की सहायता करती थीं ।

प्रथम महासभा (हाथरस) में आपको मंत्री चुना गया था ।

(१) धर्मश्रीजी :

हर जाति के जीवन में ऐसे युग निर्माता अवतरित होते हैं जो उसके हर क्षेत्र की कायापलट कर, अक्षय कीर्ति के भागी बनते हैं । गौतम गोत्रीय तनोनिष्ठ देवराजजी के कुल में उत्पन्न श्री धर्मश्रीजी, यथा नाम तथा गुण वाले ऐसे धर्मनिष्ठ तथा प्रतिभाशाली कुल–दीपक हुये, जिन्होंने अपने नाम के साथ साथ समाज को भी समुज्जवल किया । पिता श्री देवराजजी धर्मश्रीजी के विवाह के पश्चात देवलोक हो गये, पर धर्मश्रीजी ने अपने पिताजी की दीनदुखियों की सेवा और साधुसंतों की आवभगत की परम्परा को एक व्रत की भांति निबाहा । एक दिन एक तपस्वी महात्मा उनकी पेढ़ी के सामने रुके । उनको देखते ही धर्मश्रीजी हाथ पर के सारे कार्यों को छोड़कर महात्मा के स्वागतार्थ उठे । उनकी सेवा से साधु बड़े सन्तुष्ट हुये और सद्कार्यो के निर्वाह हेतु एक दिव्यमणि प्रदान कर वहां से चले गये ।

धर्मश्रीजी इस मणि से अपार वैभवशाली बने । सामान्यतः धन मनुष्यों को घमण्डी बना देता है, पर इससे ठीक विपरीत यह वैभव धर्मश्रीजी को अपने रास्ते से च्युत न कर सका । वे और अधिक विनम्रभाव से सबकी सेवा करते रहे, उस वृक्ष के समान जो फलों से लदने पर और झुक जाता है ।

जब उन्होंने देखा कि समाज कुरीतियोंसे से ग्रसित हो गया है और विशेषकर कन्या विक्रय के दूषण से, तो वे अत्यन्त क्षुब्ध हुये । उन्होंने संकल्प किया कि इस और इस जैसी अनेक कुरीतियों को दूर कर समाज को उन्नत बनाना ही होगा । इस कुपृथा के कारण अनेक कन्याएं अविवाहित रह गईं । उन्होंने इन सारी कन्याओं के विवाह बड़ी घूमधाम से कर समाज के असंपन्न लोगों की सहायता की परंतु इससे भी उन्हें शांति नहीं हुई ।

उन्होंने समग्र नगर के हितार्थ ''जूना'' के बाहर चौरंग नाम की बावली तथा देवी का एक मंदिर बनवाया । ये दोनों आज भी (खण्डहर रूप में) उनकी कीर्तिगाथा की ध्वजा फहराती हुई विद्यमान हैं । क्या समाज इन दोनों स्थलों की देखमाल करेगा ?

(२) श्री पंछीदेवजी :

आपकी प्रागट्य तिथि चेत्र शुदी तीज सं. ११३२ तथा मृत्यु वैशाख शुदी तीज सं. ११४४ मानी जाती है । मात्र बारह वर्ष की अल्पायु में अपनी अनेक लीलाओं से सबको विस्मित कर दिया । हमारे समाज के दानवीर प्रथम समाज सुधारक श्री धर्मश्रीजी की दसवीं पीढ़ी में श्री पंछीदेवजी पिंगावतजी के घर में अवतरित हुये थे । कहते हैं कि पहिले पिंगावतजी निःसन्तान थे । देवी की प्रखर भक्ति के कारण, उन्हें देवी द्वारा यह वरदान प्राप्त हुआ कि उनके पुत्र के रूप में भैरव अवतरित होंगे । ये पंछी देवजी उन्हीं भैरव के अवतार थे । धर्मश्रीजी ने साधु द्वारा प्राप्त दिव्य मणि पूजा में रख दी थी और यह मणि पिंगावतजी के पास तक रही । एक दिन पंछीदेवजी

ने उस मणि को वहां से उठा लिया और खेल खेल में धर्मश्रीजी द्वारा बनवाई बावली में डाल दी । ऐसा कर वे समाज के समक्ष दिव्य मणि की निरर्थकता बता कर, उद्यम के महत्त्व को प्रस्थापित करना चाहते थे और अपने हाथ जगन्नाथ वाली कहावत को चरितार्थ करना चाहते थे ।

(३) प्रज्ञाचक्षु ब्रह्मर्षि श्री वालजीरामजी "ब्रह्मैवाहम्"

हमारे पास वह दृष्टि नहीं है जिससे हम भगवान की अनुकम्पा को समझ सकें । लेकिन वे तो असीम दयालु हैं । ये किसी की एक वस्तु ले लेते हैं तो उसे अनेक वस्तुएं अनायास ही दे जाते हैं । ऐसा ही एक दृष्टान्त बाड़मेर का है । वहां आज से सौ वर्ष पूर्व श्री तेजपालजी मथुरिया नामक हमारे समाज के एक सज्जन निवास करते थे । इनके दो पुत्रों में हमारे चरित्र नायक श्री वालजीराम जी छोटे पुत्र थे । चेचक के भयकर प्रकोप से मेधावी बालक वालजीराम अल्पायु में ही अपने नैत्र खो बैठे । चेचक के बड़े बड़े दाग से वे अत्यन्त भौंडे लगते थे । पर जैसा कि ऊपर कहा गया है, उस सर्वशक्तिमान ने उनके नेत्र तो छीन लिये, पर उन्हें ज्ञान–नेत्र प्रदान किये । उन्हें ऐसी विलक्षण प्रतिभा ? स्मृति व आत्मिक सूझ दी कि जिसके बल पर समग्र भारतवर्ष के विद्दगण के पूज्य बन गये । वे ऐसे परमभागवत, गुरुभक्त तथा प्रखर विद्वान थे कि उनकी जोड़ का दूसरा पुरूष शोध निकालना कठिन है ।

उनका नियम था कि स्नानादि के पश्चात् अपने गुरु श्री विलासीरामजी के दर्शनार्थ रामसनेही मठ में जाया करते थे । विलासीरामजी भी दर्शनीय पुरुष थे, बडे ज्ञानी, त्यागी व विरक्त । वहां कथादि श्रवण कर, श्री वालजीराम अपरान्ह में श्री लादूरामजी परमार्य के बड़े चबूतरे पर बैठ कर प्रवचन किया करते थे । जिसे सुनने के लिये आसपास के सभी समुदायों के नर–नारी एकत्रित होते थे ।

अखिल भारतीय स्तर पर उनके उभर आने की भी एक अवस्मिरणीय व अद्भुत घटना है, जिसके साक्षी समाज रत्न आचार्य पं. बदरीप्रसाद साकरिया थे । घटना कुछ इस प्रकार घटी कि आचार्यजी के ही गांव बालोतरा में वहीं के एक नैष्ठिक पंडित श्री बालकिशनजी व्यास त्रिपुण्ड धारण कर, श्री मोहनलालजी के मंदिर में भागवत की कथा किया करते थे । इस पर कुछ श्रवणकर्ताओं ने आपत्ति की कि आप वैष्णव कथा का पाठ कर रहे हैं । अतः त्रिपुण्ड के स्थान पर उर्ध्वपुंड्र कर कथा कहनी चाहिये । इस सामान्य सी बात ने उग्र रूप ले लिया । खण्डन–मण्डन शुरू हो गया । एक पक्ष विद्योपासना मण्डल के सुधारवादी (सर्वश्री प्रतापचन्द्रजी दवे, डो. अंबादास जोशी, रामयश गुप्त, बदरीप्रसाद साकरिया, उदेराम भूरचंद्राणी तथा गोरधनदासजी साकरिया आदि थे तो दूसरी ओर कुछ रुढ़ीवादी घनाढ्यगण । दोनों ओर से बाहर के विद्वानों और संतों (स्वामी करपात्रीजी महाराज, पं. कालूलाल शर्मा, व्याख्यान वाचस्पति, संत आलाराम, सागर सन्यासी और स्वामी रमेशानन्दजी) को आमंत्रित किया गया । इससे विवाद निपटने के विपरीत बढ़ा ही । बढ़ते–बढ़ते यह विवाद समस्त उत्तरप्रदेश में फैल गया और यू.पी. के माध्यम से सिन्ध में जा पहुंचा, जहां उत्तर प्रदेश और मारवाड़ के सभी

वर्णों के लोग अधिक संख्या में रहते थे । विवाद संबंधी सर्वाधिक उग्रता हैदराबाद, सिंध में देखने को मिली, जहां इस प्रश्न को लेकर सगे संबंधियों में भी ऐसा मनमुटाव पैदा हुआ कि एक – दूसरे बोलना तक बंध कर दिया ।

बाड़मेर के श्री लादूरामजी परमार्य व श्री मथुरादासजी व्यास व्यापारिक कार्य से हैदराबाद आया – जाया करते थे । उन्होंने इस विवाद की चर्चा गांव में आकर स्वामी श्री महेश्वरानन्दजी, प्रभुलालजी जोशी तथा संत विलासीरामजी से की । गांव के अन्य मुख्याओं के साथ भी विचार–विमर्श हुआ और अंत में एक प्रतिनिधि मण्डल हैदराबाद गया । जहां उन्होंने ब्रह्मर्षि वालजीरामजी की मध्यस्थता का प्रस्ताव किया, जिसे विवादाग्रस्त दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लिया । लौटने पर जब श्री वालजीरामजी से सारी बात कही तो प्रथम तो उन्होंने मध्यस्थता के लिये ही मना कर दिया और द्वितीय बाड़मेर के बाहर तो किसी हालत में नहीं । अपने गुरु के आदेश को स्वीकार कर वे किसी प्रकार तैयार हुये । श्री विलासीरामजी के रामद्वारा में ही सारी व्यवस्था की गई । इसमें जोधपुर, बालोतरा, कराची के विद्वानों के साथ वहां की विवादग्रस्त पक्ष के सभी लोग उपस्थित ये । हैदराबाद नगरश्रेष्ठि श्री हीरानंद ताराचंद के हेड मुनीम श्री वीरूमल ईसराणी तथा इन्हीं नगरश्रेष्ठि के गुरु श्री माधवानन्दजी भी उपस्थित थे । इधर मुख्य विरोधी पक्षों ने यह इकरारनामा भी लिख कर दे दिया कि शैवों–वैष्णवों के त्रिपुण्ड और उर्ध्वपुण्ड्र के हैदराबाद में चल रहे ब्रह्मक्लेश की बाड़मेर के प्रज्ञाचक्षु महात्मा वालजीराम मथुरिया ''ब्रह्मैवाहम्'' जो निर्णय देंगे, वह हम मान्य रखेंगे और जो नटेगा, उसे ब्रह्म हत्या का पाप लगेगा । पर जैसे ही पंडितों ने ब्रह्मर्षि वालजीरामजी की कदरूपता, ग्रामीण वेशभूषा आदि को देखा तो अपने हावभाव से संशयात्मक विस्मय प्रकट किया । यह हमारे विवाद का क्या न्याय करेगा ? दूसरे दिनचर्चा के प्रारंभ में श्री वालजीरामजी ने अपने गुरु के चरण स्पर्श कर मध्यस्थ के आसन पर बिराजे । विद्वान हैरान थे कि न तो मध्यस्थकार खुद ही कुछ नोट कर रहे हैं और न ही इस संबंध में किसी की सहायता ले रहे हैं तो न्याय क्या देंगे ? तीसरे दिन भी जब यही हाल देखा तो कानाफूसी हुई । सारा उपस्थित समुदाय उस समय दिग्मूढ हो गया, जब महात्मा वालजीरामजी ने सम्पूर्ण दो दिनों की चर्चा को क्रमशः व शब्दशः सुना दिया और उन्होंने अन्त में कहा कि यह सब गुरु महाराज की कृपा का फल है । वे जैसा हुक्म करते हैं, बोलता जाता हूं ।

चर्चा का समापन करते हुये, उन्होंने अपने गुरु के चरण स्पर्श कर जब न्याय सुनाया तो दोनों पक्ष वाह ! वाह !! कर झूम उठे । एक शानदार जुलूस निकालने के लिये घोड़ों, ऊंटों, बैलगाड़ियों की कमी न थी, पर ऐसा न कर आगत पण्डितों और अतिथियों ने श्री वालजीरामजी को अपने हाथों पर उठा लिया तथा कंधों पर बिठा कर रामद्वारा से लेकर उनके घर तक अबीर, गुलालादि उड़ाते लाये । ऐसा निर्व्याज स्वागत तब से आज तक किसी पण्डित का हुआ हो, पढ़ने में नहीं आया ।

और गुरु भी कैसे ? अपने शिष्य की, प्रज्ञाचक्षु शिष्य की ऐसी दिव्य विजय

से फूले न समाते थे । महात्मा विलासीरामजी नै जैसे अपवर्ग का सारा सुख प्राप्त कर लिया हो । दूसरे दिन नित्य नियमानुसार श्री वालजीरामजी रामद्वारा गये । भीतर प्रवेश करते ही एक आदमी ने उनके चरण स्पर्श किये । वालजीरामजी न पूछा कि ''कौन ?'' उत्तर मिला कि ''यह तो विलासीराम'' । क्या दृश्य था ? भीगी पलकों से गुरु शिष्य के चरण स्पर्श कर रहे हैं और शिष्य गुरु को दण्डवत । गुरु ने कहा, तुमने मेरा, इस संप्रदाय का, बाड़मेर नगर का अपने समाज का नाम उज्जवल कर दिया है । शिष्य कहते हैं, ''महाराज यह तो आपकी कृपा का फल है । मैं तो अत्यन्त क्षुद्र हूं ।'' कहीं अंहकार का लवलेश भी नहीं । शिष्य ने तीन दिन निर्अन्न रह कर प्रायश्चित किया, जिससे वे उस पाप से मुक्त हो जायं, जो गुरु के शिष्य के चरण स्पर्श से हो गया था ।

बाल ब्रह्मचारी वालजीरामजी की शारीरिक शक्ति भी अद्‌भुत थी । वालजीरामजी अपनी लकड़ी के सहारे एक दिन बाजार से गुजर रहे थे, सामने से दो सांड दौड़ते हुये आये, प्रथम के धक्के के कारण श्री वालजीरामजी गिर गये । गिर कर वे चारों तरफ हाथ फैलाने लगे कि दूसरे की पिछली टांग उनके हाथ में आ गई । कुछ फीट तो उन्हें सांड की गति के साथ घसीटना पड़ा । उनके कपड़े फट गये । शरीर में खरोंचे आ गईं । पर यह क्या ? शक्तिशाली सांड अपनी सम्पूर्ण ताकत के साथ आगे खिसकने में असमर्थ था । वह हांफ रहा था, पर महाशक्तिशाली वालजीरामजी की गिरफ्त ही कुछ ऐसी थी कि वह टस से मस न हो सका । सारे लोग दांतों तले अंगुली दबा कर रह गये ।

उनकी विचक्षण आध्यात्मिक शक्ति का उदाहरण तो उपर्युक्त उदाहरण से भी गजब का है । एक बार श्री रामयशजी गुप्त और आचार्यजी दोनों उनके मिलने के लिये बाड़मेर गये । पांव लगने के पश्चात् इन दोनों ने जिज्ञासावश यह प्रश्न पूछा कि क्या भगवान सर्वत्र हैं ? और यदि हां तो क्या आप कोई ऐसा प्रमाण दे सकते हैं ? प्रज्ञाचक्षु ब्रह्मर्षि ने अपना कमरा बंद कर तंजीब के कपड़ की कुछ तहें बना कर, जोर से फटका । उसमें से बिजली सी उत्पन्न हुई । उन्होंने पूछा ''आपने कुछ देखा ?'' ''हां महाराज । बिजली कौंधी ।'' तो जिस प्रकार अग्नि सर्वत्र है, उसी प्रकार भगवान भी सर्वत्र हैं । उन्होंने सप्रमाण समझाया ।

ये हैं इस पुण्यशाली महात्मा के जीवन की कतिपय अद्वितीय घटनाएं, जो सहज ही हमारे मस्तिष्क को उन्नत कर देती हैं । क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं कि हम इस जातीय गौरव की दीप-शिखा को प्रज्वलित रखें ? ''न भूतो न भविष्यति'' ऐसा महापुरुष समाज को मिलना असंभव-सा है ।

विचित्रता तो यह है कि आज बाड़मेर के लोग ही नहीं, उनके परिवार के लोग भी इस महान् आत्मा की गाथा से अनभिज्ञ हैं ।

बाड़मेर में उनकी समाधि बना कर क्याहम उसे प्रेरणा का अमिट स्त्रोत न बनायेंगे ?

(४) **श्री लादूरामजी परमार्य** :– आपके पिताजी का नाम श्री अर्जुन लाल जी तथा

माता का नाम श्रीमती प्यारी बाई था । इनका जन्म बालोतरा में अनके नाना व परमभागवत व कथाकार पं. रामसुखजी के यहां वि. सं. १९४४ में हुआ था । अठारह वर्ष की आयु तक वहीं रह कर अपने मामा पं. फौजराजजी के बड़े लड़के श्री शिवनारायणजी से कार्यगत दक्षता प्राप्त की । वि. सं. १९६० में आसोतरा निवासी श्री प्रभुलालजी महेचा की पुत्री श्रीमती गजराबाई से हुआ था, जो अत्यन्त शांत व सरल प्रकृति की थी ।

सिन्ध में स्यालकोट तथा बाड़मेर में श्री अर्जुनजी का सर्राफी कामकाज चलता था, अतएव श्री लादूरामजी को अनेकों बार सिन्ध का प्रवास करना पड़ता था । बड़े ही विचक्षण बुद्वि वाले श्री लादूरामजी किसी भी समस्या के मर्म तक सहज ही पहुंच जाते थे । उनकी न्याय प्रियता सर्वत्र विख्यात थी । वे तुरंत ही नीर–क्षीर विवेक का न्याय कर देते थे । इससे समाज के तो ठीक, पर गांव के सभी लोगों पर उनको ईमानदारी व निर्भीकता की गहरी छाप थी । यही कारण था कि उनके घर पर समस्याओं के सुलझाने के लिये लोगों का बराबर आना–जाना बना रहता था ।

इनके कोई संतान न थी, उधर उनके भाई श्री सूरजमल जी की भी पैंतीस वर्ष की अवस्था में ही निःसंतान मृत्यु ही गई थी । दर्द तो अपार था, पर अपनो साहसिकता के कारण झेल गये । भाई की मृत्यु पर इन्होंने एक बालक श्री नगराज को दत्तक लिया और अपनी पत्नी से यह कह कर संतोष करने के लिये कहा कि यह बालक हमारी भी सेवा करेगा ।

विचारों से वे आर्य समाजी थे । इन्होंने अपने कुछ साथियों के साथ, जोधपुर (फतहसागर) में रहने वाले साधू पूनमचन्द की बेटी ''दाखां'' का उद्धार किया था । जोधपुर के मुसलमानों ने उसे भगा कर सिंध में ''टंडो अलियार'' में बेच दिया था । आप वहां साथियों के साथ गये और बड़ी शिफ्त से उसे निकाल कर लाये । आचार्य बदरी प्रसाद जी के समझाने – बुझाने पर भी जब जोधपुर में रहने वाले मां–बाप द्वारा पुनः स्वीकृत करने की असमर्थता प्रकट करने पर उन्होंने उसे एक धनवान हिन्दू सिंधी के यहां ब्याह दिया । इस प्रकार इस जैसी, अनेक अपहृत स्त्रियों की आपने सेवा करना अपना धर्म समझा ।

बालोतरा

(१) भक्त श्री अणदोजी (आणंदरामजी) साकरिया :

आप प्रसिद्ध भक्त व कवि पं. मगनीरामजी साकरिया के पड़दादा थे तथा श्री माधोलालजी के सुपुत्र थे । इनके विषय में अन्य बातें तो ज्ञात नहीं है, पर एक छावली भजन, जो निरंजनी महात्मा श्री रतनदासजी महाराज (बालोतरा में अपनी बगीची में) श्रोताओं की गाकर सुनाया करते थे, उसका कुछ त्रुटित अंश इस प्रकार है :–

भगत हुओ अेक अणंदो सोनी,
इसड़ो तो कोई हुओ ई कोनी ।

रामनाम सूं ताळी लागी,
कुटंब – कबीला ममता त्यागी ।
रामनाम की चादर ओढी,
तिरिया ने माता कर छोड़ी ।।

वैराग्य लेने वाले तो साधु अनेक हैं, पर जिन्होंने अपनी पत्नी को मां कह कर पुकारा हो वैसे रामकृष्ण परमहंस व महात्मा गांधी के समान भक्तवर अणदोजी ही विरल थे ।

(२) कवि शिरोमणि भक्तवर पं. मगनीरामजी साकरिया :

डींगल व बृजभाषा के उद्भट कवि व भक्त, पं. मगनीरामजी का जन्म आज से २०० वर्ष पूर्व वि.सं. १८५५ में भूतपूर्व मारवाड़ राज्य के बालोतरा गांव में हुआ था । आपके पिताजी का नाम श्री मूलचंदजी था, जो स्वयं भक्त व साहित्य रसिक थे । श्री मूलचन्द जी बचपन से ही मगनीरामजी को संतसमागम व हरिकथा में साथ ले जाया करते थे । फलस्वरूप बालक मगनीराम पर भक्ति व नीति का अमिट प्रभाव पड़ा । किशोरावस्था में ही वे महात्मा भक्तिरामजी निरंजनी की बगीची में भावपूर्ण कथा करते थे, जिसे सुन कर श्रोतागण भाव विभोर हो जाया करते थे, कथा व प्रवचनान्तर कुछ समय तक भजन कीर्तन होता था और उसके पश्चात् शंका समाधान भी करते थे । धीरे–धीरे आसपास के गांवों में भी वे इतने प्रख्यात हुये कि ऐसे धार्मिक कार्यो में अब उनकी उपस्थिति अनिवार्य समझी जाने लगी । यावज्जीवन वे सत्संग व भजनांनद में मग्न रहे तथा उनके जीवन में किसी प्रकार का कष्ट न आया । इसी को लक्ष्य पर कवि कस्तूरजी ने कहा –

जीवियो जिते सारे जन्म, व्याप्यो लेस न विघन रो ।
रातदिवस आनंद रत, मोहन सू चित मगन रो ।।

पं. मगनीरामजी स्वभाव से मिष्ठ, हृदय से उदार, बुद्धि में कुशाग्र, वाणी में मधुर, आचरण में पवित्र तथा शरीर से स्वरूपवान थे, न्याय करने की उनकी शक्ति अद्भुत थी । कठिन से कठिन समस्या को सरलता से सुलझाकर, दोनों पक्षों के आपसी वैमनस्य को दूर कर उन्हें संतुष्ट कर देते थे । उनकी यह सुवास सर्वत्र फैल गई । जब पं. मगनीरामजी एक आवश्यक कार्य से पाली गये हुये थे और वहां निरंजनियों की बगीची में ठहरे हुये थे तो उन दिनों महाराजा मानसिंह भी वहां आये हुये थे । महाराजा बगीची में नित्य दर्शनार्थ जाया करते थे । वहीं अपने "परघे" सहित सतत् दो दिनों तक मगनीरामजी के मुख से भजन व आध्यात्मिक चर्चा सुन कर बड़े प्रभावित हुये थे ।

भक्तवर पं. मगनीरामजी के देवलोक होने के संबंध में कहा जाता है कि सांसारिक उत्तरदायित्वों से निवृत्त होकर वे अपने आसामियों से मिलने के लिये गांवों में गये थे । वहां निराऩ्न मतीरा खाने से वह लग गया । सबने औषधि लेने का बड़ा आग्रह किया तो उन्होंने कहा कि रामनाम से वढ़ कर और क्या औषधि हो सकती है ?

इतना आगाध विश्वास था उनको रामनाम में । (ठीक महात्मा गांधी की भांति), उनकी मृत्यु योगियों-सी थी । ७५ वर्ष की अवस्था में वि. सं. १९३० के ज्येष्ठ मास की त्रयोदसी के दिन परिवार के सारे सदस्यों को उन्होंने बुलाया और निर्देश दिया कि उनकी मृत्यु पर रोना छोड़ कर मात्र रामधुन हो । घर के आंगन में बैठने भर की जगह को गौमेय से लिपवा कर, उस पर सिद्धासन में बैठे और अपने प्राण त्याग दिये ।

अपनी शोक विह्वल वाणी में बालोतरा के दो शाकद्वीपीय कवि बन्धुओं (श्री कस्तूरजी व श्री भैरजी) ने उनकी मृत्यु पर जो २६ मरसिये लिखे हैं । वे डींगल साहित्य में बेमिसाल हैं । शायद ही किसी की मृत्यु पर इतना भावपूर्ण मरणोत्तर काव्य लिखा गया हो –

समत उगणीसार, वरस तीसो वरदाई ।
जेठ मास घण जांण, उजली तेरस इधकाई ॥

पहर रात्रि परमाण, प्राण मगनेस पयांणो ।
मति चित अविचल मेर, जोग गत जोगी जाणो ॥

हा । हंत ॥ सबद जिण पळ हुओ, बाज छतीसां बाजिया ।
मगनेस मिंत । थारे मरण, सकल सुमंगल साजिया ॥

उमंग घणो उछाह, वणी अद्‌भुत वैकूंठी ।
मलमल मिसरु जरी, खरी कोरां री वूंटी ॥

जामो पाघ झुकाय, तिलक, माळा तुलसी री ।
परम भाग रो पोरसो, होय वैठो हुलसी री ॥

गिड़गिड़त ढोल वाजो घणा, मेळो ज्यूं ही म्हालियो ।
दाह री ठौड़ लूणी दिसा, होय वजारां हालियो ॥

पं. मगनीरामजी डींगळ व पिंगळ दोनों भाषाओं में साधिकार काव्य रचना करते थे । ये काव्य गुरु थे । कई लोग इनसे कविताई सीखते थे । इनके रचित ग्रंथ इस प्रकार हैं :– (१) मगन सतसई (२) हरिनाम बत्तीसी, (3) गूढार्थ बत्तीसी

पं. मगनीरामजी अपनी पत्नी श्रीमती खुशालीदेवी, जो कि टापरे गांव की थीं तथा जिनके पिताजी का नाम श्री गंगारामजी वल्द श्री जमाजी महेचा था, जो उनकी साधुवृत्ति के कारण बड़े सम्मान से देखा करते थे । उनसे इनके चार पुत्र हुए थे ।

आचार्य पं. वदरीप्रसाद साकरिया –

भक्ति और कवित्व, विलक्षणता और कर्मठता तथा ऋजुता और धर्मभीरूता जैसे गुणों से संपन्न, परन्तु वित्तीय दृष्टि से सामान्य परिवार में आचार्यजी का जन्म सन् १८९५ में बालोतरा में आषाढ़ बदी एकम को हुआ था । इनके प्रतितामह भक्त कवि प. मगनीरामजी डींगळ और ब्रजभाषा के उच्चकोटि के कवि थे । पितामह पं. रामसुखजी

विचक्षण बुद्धि के धनी, भगतीरामजी की बगीची में कथावाचक भी थे और साथ ही साथ आउआ ठिकाने की मुकीम थे । पिता, फौजराजजी सरल व्यक्ति थे । आचार्यजी में प्रपितामह का वैदुष्य व भक्ति, पितामह की मेधा और पिता की सरलता के दर्शन एक साथ होते हैं । इन्ही सदगुणों के कारण अनेक विकटतम अवरोधों (ऐसे कि जिनसे आदमी टूट कर बिखर जाय) के बाद भी साहित्य जगत में उनकी कीर्ति–पताका लहराई ।

मारवाड़ राज्य में जब राजधानी जोधपुर को छोड़ कर कहीं भी कन्याशाला और पुस्तकालय नहीं था तब इनकी मित्रमंडली ने बालोतरा में यह कार्य कर दिखाया । इसके साथ बालोतरा से छः मीलदूर खेड़ के विशाल मंदिर का जीर्णोद्धार का कार्यारंभ किया गया । ये कार्य आचार्यजी की सुधारवादी दृष्टि और पुरातत्त्व में रस के प्रतीक हैं ।

भक्त कवि ईसरदास बारहठ रचित 'हरिरस' का वैज्ञानिक ढंग से सुसंपादन उनकी कीर्ति का प्रथम कलश था । चार भागों में संपादित 'मुहता नैणसी री ख्यात' आपकी संपादन कला का अन्यतम उदाहरण है । 'राजस्थानी हिंदी शब्द कोश' (तीन भागों में) ने उनकी कीर्तिपताका को साहित्य–जगत मे फहाराया । त्रैमासिक शोध पत्रिका ''राजस्थान भारती'' के तीन विशेषांकों ने उनकी यशगाथा की देश–विदेश में बढ़ाय । जिस समय फणीश्वरनाथ रेणु बिहार में हिंदी का प्रथम आंचलिक उपन्यास लिख रहे थे, पंडितजी बीकानेर में 'अनोखी आन' नामक आंचलिक उपन्यास की रचना कर रहे थे ।

हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयागने आपको अपनी सर्वोच्च उपाधि 'भारत भारती रत्न' से विभूषित किया तो समाज ने 'समाजरत्न' से । गुजरात राज्य हिंदी साहित्य अकादमी ने आपकी साहित्यिक सेवाओं से लक्ष्य में रख कर, उन्हें ताम्रपत्र, शाल और सहस्र रुपये भेट कर सम्मानित किया । गुजरात चारण समाज ने भी विद्यानगर में आपका सम्मान किया । मात्र पांचवीं कक्षा पास आचार्यजी को सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, राजकोट ने दो बार पीएच.डी. के शोधप्रबंध जांचने व मौखिकी लेने के लिये परीक्षक नियुक्त किया ।

समाज ने 'न भूतो न भविष्यति' वाले एक विरल व्यक्तित्व को ३१ मई सन् १९८५ को खो दिया ।

बीकानेर

(१) १०८ वर्षीया वैद्या श्रीमती कृष्णादेवी :

श्रीमती कृष्णादेवी का जन्म नागौर शहर में सन् १८६६ में श्री जोगीदासजी मंडोरा के यहां हुआ था । पिता की पांच संतानों में वे तीसरी थीं । वैद्याजी के बड़े भाई श्री बलदेवजी भी वैद्य थे, अतएव बचपन से ही घर पर आते बीमारों को देख कर सेवा की भावना से उनका रुझान भी वैद्यक की ओर हुआ । अभी पूरे चौदह साल की ही नहीं हुई थीं कि आपका विवाह गिरानी गुवाड़, बीकानेर में श्री छोटमलजी जसमतियां के साध कर दिया गया । अब कृष्णाबाई छोटूजी की बहु के नाम से जानी

जाने लगीं । उनकी यह पहिचान मृत्यु पर्यन्त रही । स्वभाव से अत्यन्त सरल श्री छोटूजी, आजीविका के लिए श्री रामजन्द्रजी गिरानी के यहां काम करने लगे । पर आमदनी अत्यन्त कम थी । ऐसी अवस्था में श्रीमती कृष्णादेवी पति के सहायतार्थ मैदान में उत्तर पड़ीं । उन्होंने पड़ौस के श्री फकीरचन्दजी के यहां जड़ाई का काम सीखा और कई वर्षों तक इस कार्य की आमदनी से पति की सहायता की । इन्ही दिनों इनका परिचय श्री आशकरणजी सेठिया के पिता श्री किशनलालजी वकील से हुआ, जो श्रीमती कृष्णादेवी के विद्यागुरु बने । अब वे धार्मिक व वैद्यक सम्बन्धी पुस्तकों को पढ़ने लगीं ।

इसी बीच मेड़ता की ओर के गांव बेवचा के दो महात्मा श्री आत्मारामजी व श्री लक्ष्मणदासजी इन के घर आये । दोनों वैद्यक शास्त्र में पारंगत थे । कृष्णाबाई के इस ओर के रुझान को देखकर, संतों ने उन्हे वैद्यक शिक्षा देना प्रारम्भ किया । जब दोनों संत १२५ वर्ष की लम्बी आयु प्राप्त कर चले बसे तब उनके द्वारा लिखवाये गये नुसखे तथा वैद्यक ग्रंथोंके स्वाध्याय के द्वारा उन्होंने चिकित्सा प्रारम्भ की । हाथ में यश था, सेवा करने की तमन्ना थी और आत्मिक सूझ (हियो तणो उपाय) थी । कृष्णादेवी जिसको दवा देती वह रोग मुक्त हो जाता था । एक मात्र महिला वैद्यक की ख्याति सर्वत्र फैल गई थी । पहले बीकानेर के रोगी ही आया करते थे । अब आस पास के गांवों के लोग भी आने लगे । राजमहलों तक उनकी कीर्ति के पहुंचने पर राज माजीसा (डूंगरसिंहजी की रानी) बग्गी भेजकर पांचवें – सातवें दिन बुलवाया करती थीं । महाराज करणीसिंहजी के जन्म के तुरन्त बाद, उनके शरीर पर लाल लाल दाने दिखाई दिये । जब इन्हें बुलाया गया तो तुरन्त निदान कर बतलाया कि इन्हें भीतर की चेचक है । दवा दीजिये । ठीक हो जायेंगे । लाल दाने तो वास्तव में मिट गये पर इनके काले दाग उनके स्थान पर रह गये, जिन्हे उनकी चमड़ी पर बाद में भी देखा जा सकता था । इसी प्रकार महाराज शार्दूलसिंहजी का एक जख्म नहीं भर रहा था । अच्छे अच्छे वैद्य व डाक्टर असफल रहे, पर जब इन्हें बुलाया गया तो इन्होंने अपने ही द्वारा बनाये एक तेल की पट्टी बांधी । १५ दिनों में जख्म भर गया । यह देख कर वहां का.पी.एम.ओ. डॉ. मूलगांवकर स्तबध रह गया और भूरि भूरि प्रशंसा की । महाराज गंगासिंहजी के समय बीकारनेर में जब प्लैग व फ्लू का प्रकोप हुआ तो, सारा डाक्टर वर्ग भयभीत था । पर यह देवी तांगे में बैठ कर मोहल्ले मोहल्ले में दवा वितरित करती थीं । इस उल्लेखनीय सेवा के लिए महाराज साहब ने पुरस्कृत किया और राजकीय बग्गी दी, जिससे उनको सेवा करने में सुविधा हो ।

बीकानेर में मोची शहाबुद्दीन को गठिया हो गया था । किसी के दवादारू से आराम न हुआ । हताश व इनके पास आया । इनके ब्रह्मशिरास्त्र तेल मालिश से वह बिलकुल ठीक हो गया । प्रसन्न होकर उसने यह संकल्प किया कि मैं आजन्म जूतियां बनाकर आपको मुफ्त पहिनाऊंगा ।

वैद्याजी की चिकित्सा से प्रभावित होकर, बांठियां परिवार ने भीनासर स्थित चिकित्सालय में मुख्य चिकित्सक के रूप में तीन सौ रुपये मासिक पर आपकी नियुक्ति की । वे वहीं क्वार्टर में रह कर सबकी अनन्य भाव से सेवा करती रहीं । स्त्रियों

के लिए तो वे वरदान थीं । परिणामस्वरूप खूब यश अर्जित किया । तीन वर्षों के बाद संचालकों सर्व श्री चंपालालजी बांठियां व सोहनलालजी बांठिया से व्यवस्था सम्बन्धी मतभेदों के कारण उसे सदा के लिए त्याग दिया और गोगा गेट स्थित मकान में रहने लगीं । वे वहां मृत्युपर्यन्त रहीं और जीवन के अन्तिम सांस तक सबकी सेवा करती रहीं । निःशुल्क सेवा करनेके लिए इन्हें मासिक ३०००/– रुपये खर्च करने पड़ते थे । पर अन्तिम समय तक किसी के सामने हाथ न पसारा । वृद्धावस्था में लोग इन्हे ''दादी'' या ''नानी'' के नाम से पुकारते थे । वैद्य विश्वेशरनाथजी बागड़ी भी इन्हें अपनी मां तुल्य मानते थे । बचपन में इन्हीं की दवा से ये मृत्यु के मुख में जाने से बचे थे और इन्ही के हाथों बड़े हुऐ थे ।

वैसे सारा बीकानेर आपको अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखता था, पर जैन समाज में आपका विशेष सम्मान था । अपने समाज की तो वे ममतामयी मां थी । निरन्तर ७० वर्षों की निस्वार्स्थ सेवा की मूर्ति इस दादी, नानी या मां के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के लिए सभा के पंचयती भवन में १६ जून, १९७४ को एक भव्य समारोह हुआ, जिसकी अध्यक्षता, बीकानेर के संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित श्री विद्याधरजी शास्त्री ने की और संयोजन श्री सौभाग्यमल मास्टर ने । उन्हें एक थैली भी अर्पित की गई, जिसे उन्होंने तत्क्षण समाज के निर्धन छात्रों के हितार्थ वापस कर दी । इस समारोह के साढ़े चार मास बाद २० नवम्बर सन् १९७४ को आपका निधन हो गया । अन्तिम विदा के समय लोगों को अपार भीड़ एकत्रित हुई । कहते हैं कि गिरानियों के श्मशान में इनकी समाधि जाति बंधुओं ने बनावाई है ।

श्री जेठमलजी पुत्र श्री गेदरजी ने उनसे उपर्युक्त तेल बनाना सीख लिया था । वे भी इसे बिना मूल्य हर किसी को देते है । इसके अतिरिक्त एक लेप व चूर्ण बनाना भी आपने उनसे सीखा था । उसका भी प्रयोग कर रहे हैं । इसी प्रकार श्री खाजूरामजी गिरानी ने भी वैद्याजी से चालीस नुसखे घरेलू उपयोग के लिए लिख रक्खे हैं ।

वैद्याजी त्याग और निस्वार्थ सेवा का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत कर गई हैं । हम उनसे यह मन्त्र सीख कर समाजके लिए कटिबद्ध हों तो कितना उत्तम ?

(२) श्री खींवरामजी काला :

आपका जन्म जोधपुर नगर में चैत्र शुक्ला ९, विं.स. १९५४, रामनवमी के दिन हुआ था । पिता श्री बच्छराजजी तथा माता श्रीमती लक्ष्मीदेवी का देहावसान आपके शैशवकाल में ही हो गया था । ऐसी अवस्था में धर्मपरायणा नानी ने इनमें सत्याचरण, कठोर परिश्रम, समय की पांबदी, विनम्रता, सादगी तथा श्रेष्ठतम धार्मिक संस्कारों का सींचन कर एक आदर्श व्यक्तित्व घड़ने में उपयोगी कार्य किया । श्रेष्ठ गुरुओं की अमी दृष्टि आप पर सदैव रही । अध्यात्म व ज्योतिष के लिए पं. छोटूलाल श्रीमाली व पं. पूनमचन्दजी अवस्थी, जवाहरात परीक्षण के लिए सर्व श्री पं. किशनदासजी पुरोहित तथा रामवल्लभजी भजूड़, सराफा के लिए श्री जीतमलजी गिरानी तथा आभूषण निर्माण के लिए राधालालजी बाड़मेरा, जैसे गुरुओं के कारण आप निरन्तर उन्नति करते रहे ।

अपने इन्हीं विविध विषयों में माहिर होने के कारण आप यथेष्ठ प्रतिष्ठा अर्जित कर सके । यहां तक की बीकानेर दरबार गंगासिंहजी ने आपकी कलाकृति पर मुग्ध होकर १०१/– रुपये इनाम दिये थे । खद्दर के कुरते, धोती, जाकेट तथा टोपी से आवृत्त आपके उन्नत भाल पर त्रिपुण्ड आत्मिक तेज से प्रदीप्त वदन तथा व्यायाम के कारण कसा हुआ शरीर, एक सुन्दर व आकर्षित व्यक्तित्व, सबको मोह लेने में पर्याप्त था ।

वे फिजूल खर्ची तथा कुरीतियों के घोर विरोधी थे और अपने बच्चों के विवाहों में उसे अपने व्यावहार से प्रमाणित कर दिया । वे सच्चे मित्र थे व कर्तव्य परायण व्यक्ति थे । उनकी आदर्श मित्रता, जो श्री मदनलालजी व्यास के साथ थी, जिसे सारा पुष्करणा समाज भुलाये नही भूलता ।

सबके विश्वास पात्र, सबके प्रिय तथा सबके हितैषी श्री खींवरामजी का देहावसान ८१ वर्ष की अवस्था में फाल्गुन शुक्ला ७, वि.सं. २०३५ में प्रातः काल हुआ ।

(३) श्री अमोलकचन्दजी जसमतिया :

श्री अमोलचन्द्रजी जसमतिया सिंध से आकर बीकानेर में बसे थे । वे कट्टर आर्यसमाजी थे और जाति में सुधार का कार्यक्रम आपने आर्य समाज के सम्पर्क से ही प्रारम्भ किया । सुधारों को लागू करने व संगठन को मजबूत करने के लिए आपने श्री ब्राह्मण स्वर्णकार हिताकरिणी सभा की नींव रक्खी थी । श्री कोलायतजी के मेले में भी सेवा समिति नामक संस्था के माध्यम से अपनी सेवाएं देते थे ।

एक बार आपकी कठोर–परीक्षा की घड़ी आई । जब आपके ससुराल पक्ष वालों ने परिवार की एक स्त्री को मुसलमानों के हाथ बेच दिया । उन मुसलमानों ने उसे सिंध में अन्य मुसलमान को बेच दिया । जब आपको पता चला तो पुलिस को साथ लेकर बीकानेर से सिंध गये और बड़ी कठिनता से उसका उद्धार करवाया । वे अपनी परीक्षा में खरे उतरे । आपके कोई संतान नहीं थी अतएवं अपनी बहिन के लड़के श्री भगवानदासजी को गोद लिया, जो अब टी.टी.ई. हैं ।

आप महासभाओं के अधिवेशनों में बीकानेर का प्रतिनिधत्व किया करते थे । पहली महासभा में आपको उपमन्त्री बनाया गया था । सन् १९२६ में हुए बीकानेर के अधिवेशन में आप स्वागत मन्त्री थे जिसमें श्री नारायणदासजी बैरिस्टर सभापति थे ।

(४) श्री प्रयागदत्तजी कट्टा :

अपने पिता श्री बंशीधरजी की भांति आप भी आर्यसमाजी थे और समाज के कार्यों में बड़ी रुचि रखते थे । आप जड़ाई का कार्य बड़ा सुन्दर किया करते थे । जितना कलात्मक आप का कार्य था, उतनी ही कलात्मकता आपके संगीत में भी थी । महासभाओं में मंगलाचरण के रूप में आप भजन गाया करते थे ।

आपने बीकानेर के श्री रामलालजी यति के पास से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर, दवाइयाँ बनाना प्रारम्भ किया तथा उसके माध्यम से जाति सेवा करते रहे ।

आप प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने परदा प्रथा का घोर विरोध किया और जब अवसर

आया, अपने पुत्र श्रीगोवर्धनदास के विवाह में उसको हटा दिया ।

आपने भी महासभा में बीकानेर का प्रतिनिधित्व किया था । आपका परिवार इन दिनों अहमदाबाद में स्थायी रूप से निवास करता है ।

बेड़ा

भक्त केलाजी :

भक्त केलाजी और इनकी धर्मपत्नी आठों प्रहर भगवद्भक्ति और आगत साधु-सन्तों को सेवा में लीन रहते थे । परिणामस्वरूप एक दिन ऐसी स्थिति आई कि घर में साधु-स्वागतार्थ कुछ नहीं रहा । पत्नी के आभूषण तो कभी के बेच दिये गये थे और अब एक एक कर औजार भी बिक गये । चिन्तित मुद्रा में पति-पत्नी को बार बार यही विचार खाये जा रहा था कि कल कोई अभ्यागत साधु आ गया तो क्या होगा ? क्या हमारा सेवाव्रत खण्डित हो जायेगा ? वे मन ही मन भगवान से प्रार्थना कर रहे थे कि भगवन! हमें हमारे उदरभरण की चिन्ता नहीं है । आप तो हमारे पत की रक्षा करें । अत्यधिक निराशा के वश होकर वे दो पैसे की अफीम लाये । उसे दो कटोरों में घोलकर लबों पर लगाया ही था कि आकाशवाणी हुई "भक्तराज इसे मत पीओ" । पर इसे मन का छल समझ कर दूसरी बार पीने को तैयार हुए कि साक्षात श्री राम प्रकट हुए और कहा कि "मैं तुम्हारी भक्ति से अत्यन्त प्रसन्न हूं । मृत्यु का अलिंगन करने की आवश्यकता नहीं है । कल एक भीलनी कड़ा लेकर आयेगी, उसे ले लेना तथा जूना बेड़ा में कैर के नीचे मेरी एक मूर्ति गड़ी है, उसे रथ में बिठाकर धूमधाम से ले आना ऐसा कहकर भगवान अंतर्ध्यान हो गये । भगवान के दर्शन कर दम्पत्ति निहाल हो गये । प्रातःकाल सचमुच भीलनी एक कड़ा लेकर आई । उन्होंने कड़ा ले लिया और गांव वालों तथा परिजनों के साथ कैर क्षुप के नीचे गड़ी मूर्ति निकाली । भक्तराज की प्रसन्नता को कोई पार न था । मूर्ति को सज्जित रथ में रखकर खूब धूमधाम से रथ-यात्रा प्रारम्भ हुई । जिस स्थान पर रथ रुका, वहीं भगवान के आदेशानुसार मन्दिर बनवाया गया । यह स्थान सिरोही राज्य में पड़ता था पर चूंकि राज्य की स्वीकृति नही ली गई थी अतएव सिरोही राज्य ने दलबल सहित आक्रमण कर उसे रुकवाना चाहा । संयोग से बेडा ठाकुर जीवराजसिंह उस समय बाहर गये थे । अब इस संकट से कौन उबारे ? भक्तराज केलाजी ने नेत्र बंद कर भगवत् प्रार्थना में लीन हो गये । आंखें उघाड़ते ही देखा कि ठाकुर अपनी विशाल सेना के साथ आ रहे हैं । वास्तव में वे और कोई नहीं, भक्तराज के ठाकुर श्री राम स्वयं थे । सिरोही सेनाध्यक्ष ने हार मानली । मन्दिर निर्माण का कार्य पुनः प्रारम्भ हुआ तथा भगवान की उस मूर्ति की उसमें प्रतिष्ठा की गई ।

आज भक्त केलाजी के आनन्द का पार न था । प्रथम बार भाद्र शुक्ला ११ को मन्दिर पर ध्वजारोहण उत्सव पूर्ण हुआ और यह प्रथा आज भी निरन्तर चलती आ रही है । इस दिन प्रतिवर्ष बेड़चा अवंटक की ओर से ध्वजा चढ़ाई जाती है ।

ऐसे भक्तवर केलाजी का जन्म बेड़ा गांव (तहसील बाली) में सं. १६८० में एक साधारण परिवार में हुआ था । उनके कोई सन्तान नहीं थी ।

ब्यावर

(१) श्रीमती गोदावरीदेवी आर्य :

प्रसिद्ध आर्यसमाजी व ब्यावर आर्यसमाज के संस्थापकों में से प्रमुख्य स्व. श्री नन्दलालजी के बड़े भाई श्री कुंदनमलजी की ये पुत्रवधु थीं । इनके पति श्री अनन्तरामजी की अल्पायु में ही मृत्यु हो गयी थी । ऐसे दुख के समय इन्हें श्रीमती गुलाबदेवी से बड़ी प्रेरणा मिली, जो अजमेर में आर्य कन्या पाठशाला चला रही थीं । आर्यसमाज की सुधारक प्रवृत्तियों के व्यापक प्रभाव के कारण श्रीमती गोदावरीदेवी ने एक ट्रस्ट बनाकर अपने भाग की सारी जायदाद, आर्यसमाज को अर्पित कर दी । इसी से ब्यावर में गौदावरी आर्य कन्या पाठशाला का प्रारम्भ हुआ जो पल्लवित और पुष्पित होकर आज "गोदावरी आर्य बालिका महाविद्यालय" के नाम से ब्यावर में प्रख्यात है । यह संस्था ही उस महान आत्मा का अक्षय कीर्ति स्थान है । वे स्वयं तो शिक्षित न थीं पर देश की सहस्त्रों लड़कियों को इस शिक्षण संस्था के माध्यम से सुशिक्षित कर गईं ।

(२) पं. श्री नन्दरामजी काला :

श्री रामबख्शजी के घर में श्री नन्दरामजी का जन्म पोष शुक्ल ७ वि.स. १९३३ को जयपुर में हुआ था । बालापन में ही मातृ वियोग तथा अत्यधिक कष्टों को सहन करते हुए मात्र १६ वर्ष की अवस्था में वे जयपुर छोड़ कर ब्यावर में स्थायी निवासी बन गये । स्वावलंबन व अथाग परिश्रम उनके जीवन के मूलमन्त्र थे । जड़ाई करने के साथ साथ आप फोटोग्राफी, घड़ीसाजी व मशीन मरम्मत का कार्य भी बड़ी दक्षता के साथ करते थे । पं. वैद्य गोवर्धनदासजी छंगाणी इनके परम मित्र थे । वैद्यजी के प्रोत्साहन से आपने कविताएं रचना प्रारम्भ किया । प्रतिभा तो थी ही, शीघ्र अच्छी कविता करने लगे । बाद में वे "काशी नागरी प्रचारिणी सभा" के सदस्य बने । स्कूली शिक्षा नहीं वत् होने पर भी स्वाध्याय के बल पर आपने हिन्दी, गुजराती, उर्दू व अंग्रेजी सीखी । स्वरोदय का भी इन्हें अच्छा ज्ञान था । योग का भी इन्हें अच्छा अभ्यास था । इसी बढ़ती प्रवृत्ति के कारण कलकत्ता में ताड़केश्वर मन्दिर में वे तीन दिन तक निरन्तर निराहर जप तप करते रहे । जवानी में आप सनातन धर्म बाल सभा ब्यवर के अध्यक्ष भी रहे । आपने अपने सुपुत्रों को उच्चतम शिक्षा दिलवाई । बड़े पुत्र श्री बंशीधरजी ब्यावर की एक मिल के सुपरवाईजर हुऐ थे तो दूसरे पुत्र श्री मोहनलालजी भारत सरकार के उप शिक्षा सलाहकार हुए । वास्तव में श्री नन्दरामजी साहस, धैर्य, तथा कर्मठता की मूर्ति थे । उनका देहावसान कार्तिक शुक्ला १४, वि.स. २०१८ पचासी वर्ष की अवस्था में हुआ ।

(३) डॉ. जयदेवप्रसादजी शर्मा :

आप प्रसिद्ध समाजसेवी श्री रामनाथजी जसमतिया के पुत्र थे । आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ब्यावर में तथा उच्च शिक्षा आगरा में हुई । लखनऊ से आपने एम.बी.बी.एस. की डिग्री प्राप्त की और थोड़े समय के लिये ब्यावर में ही प्राईवेट प्रेक्टिस की । उसके बाद उच्च अभ्यासार्थ लंदन चले गये । जहां ससम्मान फिजियशन की डिग्री प्राप्त की । लंदन से लौटने पर ब्यावर के रेलवे स्टेशन पर आपका स्वागत करने के लिए ब्यावर निवासी उमड़ पड़े । स्वागतकर्ताओं में नगर के प्रमुख राष्ट्रकर्मी पं. मुकुटबिहारीलाल भार्गव भी थे । सरकारी सेवा में जुड़ जाने के पश्चात् आपकी नियुक्ति उदयपुर अस्पताल में हुई । अपने अध्यवसाय, अपनी योग्यता, सुमिष्ट व्यवहार तथा पियूषपाणि होने के कारण वे सर्वत्र अत्यन्त लोकप्रिय रहे । उदयपुर के महाराणा साहब के तो वे अत्यन्त प्रिय पात्रों में से थे । राजस्थान निर्माण के पश्चात् आपका स्थानान्तरण बीकानेर में हुआ । वहां भी वे अत्यन्त लोकप्रिय रहे । उसके पश्चात् आपकी बदली कोटा में पी.एम.ओ. के रूप में हुई और वही से वे सेवानिवृत्त हुए । समाज सुधार की तीव्र भावना आप में बचपन से ही थी और उसी से प्रोत्साहित होकर ब्यावर में सन् १९२१ में सभा की स्थापना की । राजस्थान के राज्यपाल के सलाहकार व प्रसिद्ध दन्त चिकित्सक डॉ. सत्यदेव शर्मा आपके अनुज हैं ।

(४) श्री बंशीधरजी जड़िया :

आपका जन्म २९ नवम्बर, १९०६ को रतलाम में ननिहाल में हुआ था । दादा श्री रामबख्शजी रामभक्त व कथाकार थे तो पिता श्री नन्दरामजी स्वाश्रयी, कठोर परिश्रमी व विविध व्यवसायों को जानने वाले गुणी व्यक्ति थे । उन्होंने स्कूल के कभी दर्शन तक नहीं किये, परन्तु आपने बच्चों को उच्चतम शिक्षा दिलाई । श्री बंशीधरजी ने अपने पिता के इस आदर्श वाक्य को हृदयगंम कर लिया था कि ऋण लेकर कभी कोई कार्य नही करना, सदैव सत्य बोलना व आध्यात्मिक चिंतन करना ! यह मूलमंत्र असफलता के दिनों में उन्हें ढाढस देता और अवरोधों को दूर करने की प्रेरणा देता ।

बचपन में जड़ाई का कार्य करना पड़ा । डॉ. जयदेवप्रसादजी शर्मा की प्रेरणा से १९ वर्ष की बड़ी उम्र में फिर से स्कूल जाना शुरु किया । आगे चलकर इन्हीं डॉ. साहब के चाचा श्री दौलरामजी की पुत्री से सन् १९२८ में विवाह हुआ । पर पढ़ना न छोड़ा । अनेक शारीरिक, आर्थिक व मानसिक कठिनाइयों के बावजूद आपने बनारस विश्वविद्यालय से एलएलबी (१९३३) तथा सन् १९३४ में एम. ए. (अंग्रेजी) में द्वितीय श्रेणी में पास किया । आपने वकालात शुरु की पर असत्य का रास्ता होने के कारण उसे शीघ्र ही तिलांजलि दे दी । जड़त व वकालात के कार्यों को उन्होंने खड्डे में निकल कर कुंए में गिरने के समान बतलाया है । अन्ततः आपने स्थानीय मिल में सुपरवाईजर की नोकरी कर ली । सन् १९५६ से १९५९ के चार वर्षों की अवधि में इन्हें कई छोटी मोटी नोकरियां करनी पड़ीं और अन्त में १९६० से १९८५ तक घर पर ही अध्यापन कार्य खूब परिश्रम पूर्वक कर जीवन निर्वाह किया । परिणामस्वरूप

घुटने बेकार हो गये ।

अंग्रेजी के एम.ए. और एलएलबी होते हुए भी हिन्दी साहित्य के प्रति आपकी रुचि प्रारम्भ से थी । किशोरावस्था में ब्यावर हिन्दी समिति की स्थापना की और आपको उसका मन्त्री निर्वाचित किया गया । अपने मंत्रित्वकाल में आपने हिन्दी के अनेक विद्वानों को आमन्त्रित कर हिन्दी के प्रचार प्रसार में बड़ा योगदान दिया । यही अभिरुचि आगे जाकर पल्लवित व पुष्पित हुई और एक काव्य संग्रह ''ज्योति किरण'' तथा एक निबन्ध संग्रह ''गहरे पानी पैठ'' से आपने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की । आधुनिक हिन्दी के निबन्ध संग्रहों में यह उनकी गणना पात्र कृति है ।

अध्यवसाय की प्रतिमूर्ति, कवि व लेखक निष्ठावान व ईमानदार तथा स्वाश्रयी जीवन के उद्घोषक श्री बंशीधरजी हमारे समाज के एक ज्योतिर्धर थे । ८ जनवरी, १९७७ को उनके निधन से समाज को ऐसी भारी हानि हुई है, जिसकी पूर्ति असंभव है ।

आपके बड़े पुत्र श्री सत्यप्रकाश कश्यप लार्सन एण्ड टूब्रो जैसी बड़ी कम्पनी के बोर्ड आफ डाईरेक्टरस् के वाईस चैयरमैन हैं ।

(५) श्री मथुराप्रसादजी बाड़मेरा :

ब्यावर के अग्रगण्य समाज सेवियों और समाज सुधारकों में श्री मथुराप्रसादजी बाड़मेरा का नाम सदा ससम्मान लिया जायेगा । उन्हें एक कर्मठ कार्यकर्ता, निर्भीक, कानूनी कार्यवाहियों में दक्ष, प्रखर आर्यसमाजी तथा व्यावहारिक कार्यों में कुशल व्यक्ति के नाते भी स्मरण किया जायेगा । अनेक वर्षों तक वे आर्यसमाज के मन्त्री व बाद में अध्यक्ष रहे ।

हाथरस में प्रथम महासभा के आयोजनार्थ जिन चार सदस्यों का प्रतिनिधि मण्डल पं. मुरलीधरजी साकरिया से मिलने गया था, उनमें श्री मथुराप्रसादजी भी एक थे । हाथरस की महासभा के समय उनकी सक्रियता व निष्ठा को देखकर सभी बड़े प्रभावित हुए तथा उन्हें महासभा का प्रथम मन्त्री बनने का गौरव प्राप्त हुआ । ब्यावर अधिवेशन की सफलता का अधिकांश श्रेय आपके हिस्से में जाता है ।

(५) पं. नन्दलालजी आर्य :

पं. नन्दलालजी ब्यावर आर्यसमाज के संस्थापक थे तथा तन मन धन से समाज सेवा व परोपकार के कार्यों में निरन्तर लगे रहे थे । वे शास्त्रज्ञाता विद्वान ये । हाथरस महासभा का दूसरे दिन का कार्य आपके मंगलप्रवचन तथा नित्यकर्म विषयक व्याख्यान के साथ शुरु हुआ था । तीसरे दिन के सभापति के पद पर आपका ही वरण किया गया । प्रथम वर्ष की कार्यकारिणी में भी आपका चयन हुआ । इसके बाद जब ब्यावर में महासभा हुई तो आपको स्वागताध्यक्ष बनाया गया ।

(६) श्री रामनाथजी जसमतिया :

प्रथम महासभा को बुलाने में आप काफी सक्रिय रहे । जोधपुर में महासभा की

संभावना को न देख आपने व्यावर में अपने निवास पर प्रारम्भिक बैठक बुलाई थी, जिसमें श्रीनारयणदासजी बैरिस्टर, श्री छगनीराम जी कट्टा, पं. बदीप्रसादजी साकरिया, श्री नन्दलाल जी आर्य, श्री मथुराप्रसाद जी बाड़मेरा व श्री भूपतिरामजी कट्टा थे । वे आर्यसमाजी थे । तथा आपका दृष्टिकोण सुधार वादी था । आप भी प्रथम कार्यकारिणी के चयनित सदस्य थे तो दूसरी कार्यकारिणी में भी आपका वरण हुआ था ।

वहां पर भी उसकी संभावना को न देख, श्री भूपतिरामजी कट्टा के सुझाव पर एक प्रतिनिधि मण्डल पं. श्री मुरलीधर जी साकरिया को मिलने हाथरस भेजा गया था ।

लाडणू

संत श्री गोविन्ददासजी :– आज से दो सौ पंद्रह वर्ष पूर्व भूतपूर्व जोधपुर राज्यान्तर्गत लाडणू नगर में हमारे समाज के एक ऐसे संत हुये थे, जो न केवल स्वयं जीवनमुक्त हुये, बल्कि उनके सम्पर्क में आने बाले अनेक जन भी भवसागर तैर गये ।

जिस स्थान पर आज उनकी छत्री स्थित है, उस समय वह समाज की श्मशान भूमि थी, पर तत्कालीन राज्य सरकार ने इस महान संत की पावन स्मृति में सारी भूमि समाज को बगीची के लिये दे दी तथा श्मशान के लिये अलग भूमि प्रदान की । इनकी शिष्य मण्डली में विद्वान ब्राह्मण, धनवान सेठगण, राजकीय अधिकारी तथा विशाल हिन्दू समाज के सभी वर्णों के लोग थे ।

प्रसिद्ध महात्मा प्रेमदासजी आपके गुरु थे और संत दरियावजी गुरुभाई । यही दरियावजी आगे चल कर रामसनेही संप्रदाय के रैणधाम के अधिपति बने, पर गोविन्ददासजी किसी गद्दी के महंत बनना नहीं चाहते थे और न ही उन्हें अपनी शिष्य परम्परा को चालू रखने में रस था । वे सच्चे मानों में वीतरागी थे । अपने गुरु के प्रति समर्पण की भावना उनके एक पद में देखने को मिलती है :–

रामकृष्ण वपु प्रेम, प्रेम गंगा अरु काशी ।
अड़सठ तीर्थ प्रेम, प्रेम रिख सहस अठासी ।।
गोरख जोगी प्रेम, प्रेम जन साद शरीरा ।
भक्त सरोवर प्रेम, प्रेम जन दास कवीरा ।।
मो मति तुच्छ महिमा अनंत, नाव सिंधु–भवतरण री ।
गोविन्द धूड़ मस्तक धरी, श्री प्रेमदास चरण री ।।

संत गोविंददासजी ने 'निर्गुण स्तुति', ''शब्द प्रभाती'' ''उक्ति अनूप'' और वेद विचार आदि आध्यात्मिक ग्रंथों का निर्माण किया । वे निर्गुणोपासक संत थे और अहर्निश उनके आवास पर राम नाम की धुन चला करती थी । संतजी ने राम रटन का वर्णन इस प्रकार किया है :–

श्रवणां सुन राम नाम, रसना रटे रामनाम, हृदे हित रामनाम राम लौ लगाई है ।
मन को मन रामनाम, चित को चित राम नाम, रामनाम सूं ही सूती आत्मा जगाई है ।

सुख को सुख रामनाम, रस को रस रामनाम, रामनाम लेतां राम रामरिध पाई है ।
गोविन्द गरकाभ भये रामरस सागर में, रामविना रहवो नहीं राम की दुहाई है ।।

अभी अभी श्री मोतीलालजी शर्मा, कलकत्ता के प्रयत्नों से श्री गोविंददासजी का अपने शिष्यों के साथ का एक दुलर्भ चित्र प्राप्त हुआ है । जिसमें वे अपने आठ पट शिष्यों को उपदेश दे रहे हैं । इन आठों शिष्यों के चित्र में नाम दिये गये हैं, जो इस प्रकार है :–

संत सर्वश्री डूंगरामजी, सुखरामजी, गुमानीरामजी, जैरामजी, परसरामजी, सीहीरामजी, विद्यारामजी और चेतनरामजी ।

हाथरस

महासभा के जनक पं. मुरलीधरजी साकरिया :

सन् १९२३ में ब्राह्मण स्वर्णकार समाज का हाथरस (उत्तर प्रदेश) में प्रथम सम्मेलन बुलाकर समाज संगठन जैसे भगीरथ कार्य को हाथ में लेने वालों व उसे नई दिशा देने वाले त्यागमूर्ति वानप्रस्थी पं. मुरलीधरजी साकरिया अपने योग्य पिता पं. हरिनारायणजी शास्त्री के योग्य पुत्र थे ।

पं. मुरलीधरजी के जवाहरात आदि के अनेक धन्धे चलते थे, जिससे वे हाथरस के अत्यन्त समृद्धशाली व्यक्तियों में गिने जाते थे । अलीगढ़ व हाथरस के रास्ते पर हाथरस से पांच मील दूर आपने एक विशाल भूभाग क्रय कर, उसे एक सुन्दर बगीचे के रूप में परिणित किया और साथ ही अपने निवास के लिये दो एक कमरे भी बनवा दिये । बाद में स्त्री शिक्षा की अत्यावश्यकता को देख, उन्होंने उसमें योजनाबद्ध अनेक कमरे बनवा दिये जो कालान्तर में कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, हाथरस के नाम से विख्यात हुआ । प्रारम्भ में तो वे और उनकी धर्मपत्नी ही अध्यापन का कार्य करती थीं । पर धीरे–धीरे जब छात्राओं की संख्या बढ़ती गई, बाहर की निष्ठावान अध्यापिकाओं को नियुक्त गया । इन सबके अतिरिक्त फिरोजाबाद के पं. हीरालल जी साकरिया, शास्त्री, संस्कृत भाषा के अध्यापक थे तो उनकी धर्म पत्नी हिंदी की अध्यापिका थीं । गुरुकुल का सारा व्यय भार पं. मुरलीधरजी वहन करते थे । बाद में शास्त्रों के और पठन–पाठन तथा साधु–महात्माओं की सेवा संगति से प्रभावित होकर आप संसार से उपराम हो गये और पति–पत्नी दोनों वानप्रस्थ लेकर, वहीं एक कोने में कुटिया बनवा कर रहने लगे ।

समाज संगठन व उसमें सुधार की कश्मकश तो अनेकों के हृदयों को आंदोलित कर रही थी । पर कुछ बन नहीं पड़ रहा था । समाज की पतनोन्मुख दिशा से चिंतित होकर तथा कुछ कर गुजरने को इच्छुक कुछ महानुभावों की एक बैठक ब्राह्मण स्वर्णकारों की घाटी पर जौहरी हरिरामजी के घर श्री नारायणदासनी बैरिस्टर, श्री छगनीराम जी (छिनजी) कट्टा, श्री रामनाथजी जसमतिया (ब्यावर) और आचार्य पं. बदरीप्रसादजी

साकरिया सम्मिलित थे । इस बैठक में आचार्य साकरियाजी ने तथा बैरिस्टर साहबने, जाति पर हो रहे दमन, आपसी फूट तथा कुरिवाजों का सोदाहरण हृदय द्रावक दृश्य उपस्थित किया और इन सबके एक मात्र उपचार के रूप में समाज का अखिल भारतीय संगठन बताया गया ।

इसमें किसी के दो मत होने का प्रश्न ही नहीं था । तुरन्त अगले कदम के रूप मे ब्यावर में श्री रामनाथजी जसमतिया के यहां एक बैठक बुलाई गई, जिसमें श्री नंदलालजी आर्य (ब्यावर), श्री मधुराप्रसादजी बाडमेर (ब्यावर), श्री भूपतिरामजी कट्टा, (अजमेर), श्री नारायणदासजी बैरिस्टर, श्री छगनीरामजी कट्टा, (जोधपुर) श्री शिवरतनजी (फ्लोधी) समाजरत्न श्री हेमराजजी, के पिता श्री तथा आचार्य बदीप्रसादजी साकरिया थे ।

सम्मेलन कहां बुलाया जाय ? कितने प्रतिनिधि आयेंगे ? हजार--प्रन्द्रह सौ प्रतिनिधि आयें तो उनके आवास और भोजनादि का खर्च वहन करने वगैरे समाजकी परिस्थिति की देखते अति विकट प्रश्न थे । अन्त में श्री भूपतिरामजी कट्टा ने अपने संबंधी पं. मुरलीधर साकरिया के संबंध में कहा कि यदि वे ''हाँ'' भर लेते हैं तो कोई प्रश्न ही नहीं रहेंगे । तुरन्त एक प्रतिनिधि मण्डल, ब्यावर से ही हाथरस के लिये रवाना हुआ जिसमें स्वश्री नारायणदासजी, मथुराप्रसादजी, छगनीरामजी तथा भूपतिरामजी कट्टा थे ।

हाथरस में बगीचे के मनोरम्य वातावरण पं. मुरलीधरजी के निश्छल प्रेम और अतिथ्य से सभी बड़े प्रेरित हुये । प्रतिनिधि मण्डल द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव का उन्होंने हृदय से स्वागत किया और कहा कि यह एक अत्युत्तम कार्य है । प्रभु कृपा से यहां सारी सुविधायें उपलब्ध हैं । आप इस ओर से निश्चित होकर आयोजन को आकार देने में जुट जाइये ।

प्रतिनिधि मण्डल के इस प्रेमपूर्ण नियन्त्रण को कि आप सम्मेलन के अध्यक्ष बनें, उन्होंने सविनय यह कर अस्वीकार कर दिया कि मुझे ही जिनका आतिथ्य करना है, उसके लिये क्या यह शोभनीय है ? मेरी वानप्रस्थी अवस्था में यह उचित भी तो नहीं है । पं. हीरालालजी शास्त्री व श्री चतुर्भजजी साकरिया प्रतिनिधिओं की सुख-सुविधा की सारी व्यवस्था को देख लेंगे ।

इन्हीं दानवीर पं. मुरलीधरजी साकरिया ने समाजहित मथुरा में धर्मशाला भी बनवाई थी ।

पं. मुरलीधरजी के मना करने पर, उस समय यह तय हुआ कि अधिवेशन के समय ही एकत्रित सज्जनों में से अध्यक्ष चुन लेंगे, पर हुआ यह कि चार दिन के अधिवेशन के लिये चार अध्यक्ष चयनित हुये, जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार है :- प्रथम दिन के अध्यक्ष ज्वालापुर गुरुकुल आर्य महाविद्यालय के अध्यापक व ब्रह्मचारी पं. जयनारायण शास्त्री (साकरिया) थे । दूसरे दिन के अध्यक्ष पं. नंदलालजी काला (ब्यावर) थे । तृतीय दिन के अध्यक्ष आचार्य पं. हीरालालजी शास्त्री थे और चौथे दिन के अध्यक्ष पं. नारायणदासजी बैरिस्टर थे ।

इस सम्मलेन में सिंध, मध्यप्रदेश, तथा राजस्थान के अजमेर, ब्यावर, जोधपुर, बीकानेर आदि पैंतीस स्थानों के प्रतिनिधि आये थे । आधिवेशन का सारा खर्च पं. मुरलीधरजी ने वहन किया । चौथे दिन का भोजन जरूर ब्रजवासी समाज की ओर से हुआ था ।

वस्तुत समाज का प्रथम सम्मेलन बुलाकर उन्होंने दीपस्तम्भ की भांति भविष्य का मार्ग प्रशस्त किया था । यह उन्हीं का पुण्य प्रताप है कि उनके द्वारा बोया गया हमारे जाति संगठन का बीज आज फलने लगा है ।

सिंध टण्डो जान महिमद

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत इस देश में सैकडों संप्रदाय हैं और इनमें से प्रत्येक के प्रवर्तक बड़े समाज सुधारक, प्रकाण्ड विद्वान अथवा आत्मज्ञानी सिद्ध हुये हैं । ब्रह्म समाज व आर्य समाज हमारे युग के ऐसे संप्रदाय हैं, जो समाज की सुधारवादी प्रवृत्तियों को लेकर चले, पर विशुद्ध धार्मिक प्रवृत्तियों को लेकर ''हंस निर्वाण'' सम्प्रदाय के प्रवर्तक महात्मा ''हंस निर्वाण'' जी महाराज इस युग के ऐसे अकेले पंथ प्रवर्तक हैं, जिन पर हम सहज ही गौरव कर सकते हैं ।

वि. सं. १९४७ चेत्र शुक्ल नौमी को आप सिंध के टंडो–जान महिमंद कस्बे में श्री ज्येष्ठानंदजी बूचा के यहां अवतरित हुये थे । आपकी माता का नाम रमादेवी था, जो अपने नाम के अनुरूप लक्ष्मी ही थी । पूत के लक्षण का पता पालने में ही चल जाता है, के अनुसार बालक हंसराज जन्म से ही विलक्षण चिन्हों वाले थे । गौर वर्ण, सुडौल शरीर व मुख की आभा एक अनूठे आकर्षण के केन्द्र थे । बचपन में साधारण बालकों की भांति खेलकूद, खानपान, वेशभूषा में उनका मन नहीं लगता था । वे प्रारम्भ से ही वीतरागी की भांति अकेले चिंतनशील रहा करते थे । यों उन्होंने सिंधी छट्टी कक्षा तक ही औपचारिक शिक्षा प्राप्त की थी, पर सच्ची शिक्षा तो उसके बाद में ही प्रारम्भ हुई ।

१८ वर्ष की अवस्था में आपने अपने पिताजी को विनम्रता से बतला दिया था कि वे विवाह नहीं कर सकेंगे । पिताजी ने भी उनके वीतरागी स्वभाव को देख कर उनकी बात को स्वीकार कर लिया था । उसके पश्चात् अपने गुरु भाण साहेब की देख–रेख में धारणा से वेदांत आदि शास्त्रों का अध्ययन किया, जो निश्चय ही अत्यन्त दुष्कर कार्य है ।

२३ वर्ष की अवस्था में आपने सिंध में पुराण नदी के किनारे 'निर्वाण आश्रम' की स्थापना की । आश्रम में निश्चित कार्यक्रमनुसार जप, कथा, उपदेश तथा स्वाध्याय आदि का कार्यक्रम चलता था । यहां आपके तथा आगत साधुओं के प्रवचन हुआ करते थे व सभी साधू आकाशवृत्ति रूप निर्वाह किया करते थे । (निर्वाह के लिये कोई साधन न हो और जैसा रूखा सूखा मिले खाकर आनन्द अनुभव करने की क्रिया को आकाश वृत्ति निर्वाह कहते हैं ।) इन सबसे आस-पास के प्रदेशों में आप अति प्रख्यात हुये ।

आज आपके लक्षाधिक अनुयायी हैं, जो सभी वर्गों व वर्णो में से हैं । विधान सभा के सदस्य हैं तो ऊंचे पदाधिकारी भी व्यापारी हैं तो कृषक भी । आपके और आपके शिष्यों द्वारा स्थापित अनेक आश्रम हैं । जोधपुर में भीमभड़क व चौपासनी रोड पर नाइयों की बगीची के सामने, पाली, अजमेर, नागौर, मेड़ता, डेगाना, किशनगढ़ आदि स्थानों पर आपके आश्रम राजस्थान में है तो गुजरात में राधनपुर, अमरापुर, हंसपुरा (उनके नाम पर बसा नया गांव) काठियावाड़ में खेरवा और मध्यप्रदेश में इंदौर स्थानों में हैं ।

सिंध के निर्वाण आश्रम के सम्बन्ध में परम हंस ब्राह्निष्ठ हंसनिर्वाण जी महाराज के शिष्य व कवि श्री गिरधारीलाल जी ने कुंडलियाँ छंद में इस प्रकार वर्णन किया है :–

सिंध देश मध्य गांव है, माहिमद टंडा जान ।
तहां परम गुरु रहत है, वांध आश्रम निरवाण ।
बांध आश्रम निरवाण, आश्रम की छवि है न्यारी ।
कहे गिरधारीलाल, चैत मेला पर सिद्ध ।
हंस साहेव गुरु नांव, देश है ताका सिंध ।।

श्री हंस निर्वाणजी महाराज कितने उच्च कोटि के अवतारी पुरुष थे, उसका वर्णन उनके एक राजपूत शिष्य व कवि ने राग टोडी में किया है, वह दर्शनीय है :–

जगत में हो रही जय जयकार । आये श्री हंस साहिव अवतार ।टेक।।
निज भगतन के तारण कारण, प्रगटे या संसार ।
अज्ञानिन की ज्ञान कराकर, भव से करते पार ।।
पांच तत्व पच्चीस प्रकृति की, दूर करे क्षिण वार ।
यह नहीं तेरी तूं नहीं इनका, देते सत विचार ।।
अधर्मी वातें छुड़वा कर, दीनी धर्म की सार ।
भारतसिंह हंस साहिव गुरां शरणे, मोक्ष दाता करतार ।।

महात्मा हंस निर्वाणजी रचित उठारह पुस्तके हैं, जिनमें श्री शब्द सागर श्री हंस बोधप्रकाश व हंसगीता अपेक्षाकृत बड़े ग्रंथ हैं, ये सभी ग्रंथ उच्चकोटि के आध्यात्मिक हैं जो लेखक के यहाँ संग्रहीत हैं ।

वि.सं. १९४७ में आपने किशनगढ़ में अपनी पार्थिव देह छोड़ कर निर्वाण पद प्राप्त किया । किशनगढ़ में आपकी समाधि बनी हुई । २४ मार्च, १९८८ को ही सारे आश्रमों के संत–महात्मा किशनगढ में अपने गुरुदेव ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्म श्रोत्रिय श्री हंस निर्वाणजी महाराज के समाधि स्थान पर पंथोचित मंदिर, पुस्तकालय, ज्ञानशाला आदि के निर्माण तथा पंथ प्रचार के लिये एकत्रित हुये थे ।

(२) **महंत श्री ईसरदासजी** :– त्यागमूर्ति बाल ब्रह्मचारी ब्रहनिष्ठ श्री श्री १००८ महंत श्री ईश्वरदासजी का जन्म सिंध हैदराबाद में श्री संतोषदासजी बाड़मेरा के घर में माता श्रीमती मूली बाई की कोख से वि.सं. १९५१ में हुआ था । बाल्यावस्था से ही आप विरक्त स्वभाव के थे । भगवद भजन में विशेष रुचि थी । ऐसी अवस्था

में माता के देहावसान के कारण वैराग्य की भावना और तीव्र ही गई । अंत में आपने घर बार त्याग दिया और मंहत रघुवरदासजी के शिष्य बन गये । ये रघुवरदासजी महाराज नागा वैरागी श्री रामानंदाचार्य मतानुयायी थे, जिनका गुरुद्वारा चित्रकूट निर्वाणी अखाड़ा कहलाता है । इन्हीं की देख-रेख में युवा साधु ने शास्त्रों का अध्ययन किया तथा पूजा-अर्चनादि कार्यों का ज्ञान प्राप्त किया । श्री रघुवरदासजी की मृत्यु पर आपको महंत के रूप में गद्दी पर बिराजमान किया गया। साधु हो जाने के पश्चात् भी समाज के लोग उनकी सलाह इत्यादि के लिये आया करते थे । और वे भी विशेष रस लेकर समाज के विधाध्ययन के कार्यों में मार्गदर्शन करते थे । उनकी देख-रेख में रात्रि पाठशाला का प्रारम्भ हुआ तथा नवयुवक मण्डल की स्थापना हुई ।

देश के विभाजन के बाद, जोधपुर में बाईजी के तालाब के ऊपर नृसिंह-दड़ा मंदिर में आप निवास करते थे और वहीं पोष वदी १३ वि.सं.२००४ को ब्राह्ममुहूर्त में देह त्याग कर ब्रह्मात्मा में लीन हो गये ।

(३) **श्रीमती रम्भावाई मधुरिया** :- भारतीय सिद्ध-संत इतिहास में ऐसे उदाहरण क्वचित ही मिलेंगे कि एक स्त्री किसी सिद्धासन की गद्दीनशीन बनी हो । ऐसा अद्‌भुत सौभाग्य हमारे समाज को मिला था । जब श्रीमती रम्भाबाई जैसलमेर के रुपसीया गांव के सिद्धों की गद्दीनशीन हुईं । वे बड़ी तपस्विनी थीं और यह उनकी घोर तपस्या का ही सुफल था कि उनके अनेक चमत्कारों से प्रभावित होकर जैसलमेर के राजा केसरसिंह जी, तत्कालीन भारतीय पार्लियमेंट के सदस्य सेठ सुखदेव, मि.-मिर्जा, सेठ, साहुकार जैसे तथा साधारण जनसमुदाय में से बड़ी मात्रा में इनका शिष्य समुदाय था । वे इतनी प्रसिद्ध व प्रभावशाली थीं कि हैदराबाद नगर की एक पाठशाला का नाम, उनके नाम पर रखा गया । वैसे वे तो रमता राम थीं, पर हैदराबाद में उनका निवास कबीर चौरे में हुआ करता था ।

वे आज से एक सौ बारह वर्ष पूर्व सिंध हैदराबाद में हुई थीं ।

(४) **श्री कानजी गंगारामाणी परमार्य** :- हैदराबाद (सिंध) नगर पालिका के प्रतिष्ठित सदस्य, श्री कानजी गंगा रामाणी अत्यन्त परोपकारी वृति के व्यक्ति थे । समाज की उन्नति और उसके विकास में आपको गहरी रुचि थी और यही कारण था कि वे हाथरस व ब्यावर में भरी जानेबाली महासभाओं में न केवल स्वयं प्रतिनिधि के रूप में आये बल्कि अपने साथ स्थान-स्थान के उन युवक कार्यकर्ताओं को भी लाते थे, जिनको सामाजिक कार्यों में रस था । आपकी सक्रियता व सेवाओं की ध्यान में रखकर, ब्यावर महासभा में आपको उपसभापति बनाया गया । आप आर्य समाजी थे । समाज-सुधार की आपकी एक तमन्ना थी । समाज के कुछ सदस्यों में अखाद्य खान-पान की कुटेव को छुड़वाने के लिये आप कृत संकल्प थे । हैदराबाद में ही बीच सड़क पर हमारे ही समाज के "महात्मा परमहंसजी" की बनी समाधि के दर्शन आपने आचार्य पं. बदरी प्रसादजी साकरिया को तथा श्री मथुरादासजी व्यास व श्री लादूरामजी परमार्य को करवाये थे । इन्होंने जीवित समाधि ली थी । इनकी जीवनी को प्राप्त करने के प्रतत्न जारी है ।

परिशिष्ट-३

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि :

१.	वेद	:	ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, भागवत
२.	ब्राह्मण गंथ	:	ऐतेरय, शतपथ
३.	पुराण	:	(१) मत्स्य, स्कंद, ब्रह्म, वैवर्त
			(२) अर्बुद, पुष्कर, श्रीमाल
४.	महाभारत	:	शांति पर्व
५.	गीता		
६.	वाल्मीकि रामायण		
७.	इतिहास	:	पुष्करणा ब्राह्मणों का इतिहास
		:	दाधीच ब्राह्मणों का इतिहास
		:	मारवाड़ राज्य का संक्षिप्त इतिहास–पं. रामकरण आसोपा
		:	Annals & Antiquities Rajasthan - Tod
८.	अशोक के फूल	:	डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी
९.	भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार	:	श्री के. एम. कापड़िया, अनुवादक –श्री हरिकृष्ण रावत
१०.	अर्बुदामण्डल का सांस्कृतिक वैभव	:	श्री सोहनलाल पटनी
११.	जाति अन्वेषण	:	
१२.	ब्राह्मण निर्णय	:	
१३.	शब्द सागर	:	ब्रह्मनिष्ठ हंसदासजी
१४.	श्रीमाली अभ्युदय,	:	
१५.	स्वर्णप्रभा व	:	
१६.	निगमागम चंद्रिका के कतिपय अंक		
१७.	हाथरस, ब्यावर, जोधपुर अधिवेशनों की रिपोर्टस्		
१८.	भारत धर्म महामंडळ की व्यवस्था		
१९.	काशी विद्वान्मंडळ की व्यवस्था ।		
२०.	मनुस्मृति		
२१.	पालीवाल ब्राह्मणों का इतिहास		
२२.	मृच्छकटिकम्		
२३.	माउण्ट आबू	:	ले. ओमप्रकाश गुप्ता

२४. जोधपुर की इतिहास समिति में पढ़े गये लेख, सर्व श्री प्रो. रामस्वरुपजी, गोविंदरामजी हैड़ाऊ, डो. चंद्रदेवजी शर्मा, ज्वालाप्रसादजी शास्त्री, देवकृष्ण कश्यप,

बदरीप्रसादजी साकरिया ।
२५. मारवाड़ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट १८९१
२६. अनेक विद्वानों से पत्र व्यवहार

परिशिष्ट-४

वित्तीय सहयोग :

४०००–००	सौ. मीना धर्मपत्नी स्व. श्री हरीश, बम्बई
	सौ. इन्दु धर्मपत्नी श्री अशोक, बम्बई
	सौ. संगीता धर्मपत्नी श्री नरेश, कोलकाता
३०००–००	सौ. लीला धर्मपत्नी श्री अमृतलालजी, बम्बई
	सौ. विद्या धर्मपत्नी श्री नटवरलालजी, बम्बई
३०००–००	श्री फूलचंदजी मंडोरा, अहमदाबाद
२०००–००	श्री लादूरामजी (वासा वाले) बम्बई
३०००–००	ब्याज के
१५,०००–००	योग

आचार्य पं. बदरीप्रसाद साकरिया

जन्म स्थान : बालोतरा (राज.)

जन्म तिथि : आषाढ़ वदी १ सं. १८९५

निधन : ३१ मई, १९९५

रचनाएँ

- अनोखी आन (आँचलिक उपन्यास)
- हरिरस
- मूहता नैणसी री ख्यात (चार भाग)
- ईसरदास
- कल्ला रायमलोत
- राजस्थानी हिन्दी शब्दकोश (तीन भाग)
- राजस्थान भारती (शोध पत्रिका), बीकानेर के सम्पादक

डॉ. भूपतिराम बदरीप्रसादोत

जन्म स्थान : बालोतरा (राज.)

जन्म तिथि : ८ जून, १९२६

शिक्षा : एम.ए.,बी.एड पीएच.डी. शोध निदेशक ।

- छेटो (काव्य)
- आधुनिक राजस्थानी साहित्य (इतिहास)
- पृथ्वीराज राठौड़: व्यक्तित्व और कृतिस्व (शोध ग्रन्थ)
- दुरसा आढा ग्रन्थावली
- अचलदास खीची री वचनिका
- भक्त कविवर पं. मगनीरामजी साकरिया : व्यक्तित्व व कृतित्त्व
- संक्षिप्त राजस्थानी साहित्यिक व संस्कृतिक कोश
- महाप्राण निराला
    - मीरा रा प्रभु गिरधरनागर
    - गुजरात के हिंदी साहित्यकार (तृतीय संस्करण)
    - गुजराती हिंदी प्राध्यापक परिषद की सदस्य परिचायिका
    - तपोनिष्ठ ब्राह्मणों का इतिहास
    - अनेक पाठ्य पुस्तकें